स्वदेशी चिकित्स्या भाग 3

विषय सूची

प्रस्तावना 4

प्रथम अध्याय – अर्श रोग चिकित्सा 5–31
(मूळव्याध, बावासीर, भंगदर आदि रोग)

द्वितीय अध्याय – अतिसार रोग चिकित्सा 32–51
(दस्त, पेचिश आदि रोग)

तृतीय अध्याय – ग्रहणी रोग चिकित्सा 52–66
(आमाशय एवं पेट से जुड़े रोग)

चुर्तथ अध्याय – मूत्र रोग चिकित्सा 67–75

पंचम अध्याय – प्रमेह रोग चिकित्सा 76–82
(मधुमेह, डायबिटीज आदि रोग)

शष्ठम् अध्याय – विद्रधि, रोग चिकित्सा 83–90
(पका हुआ फोड़ा.)

सप्तम् अध्याय– गुल्म रोग रोगों की चिकित्सा 91–111
(पेट की गांठ के रोग)

अष्टम् अध्याय – उदर रोग चिकित्सा 112–120
(पेट के सामान्य रोग)

प्रस्तावना

भारत में जिस शास्त्र की मदद से निरोगी होकर जीवन व्यतीत करने का ज्ञान मिलता है उसे आयुर्वेद कहते है। आयुर्वेद में निरोगी होकर जीवन व्यतीत करना ही धर्म माना गया है। रोगी होकर लम्बी आयु को प्राप्त करना या निरोगी होकर कम आयु को प्राप्त करना दोनों ही आयुर्वेद में मान्य नहीं है। इसलिये जो भी नागरिक अपने जीवन को निरोगी रखकर लम्बी आयु चाहते हैं, उन सभी को आयुर्वेद के ज्ञान को अपने जीवन में धारण करना चाहिए। निरोगी जीवन के बिना किसी को भी धन की प्राप्ति, सुख की प्राप्ति, धर्म की प्रप्ति नहीं हो सकती है। रोगी व्यक्ति किसी भी तरह का सुख प्राप्त नहीं कर सकता है। रोगी व्यक्ति कोई भी कार्य करके ठीक से धन भी नहीं कमा सकता है। हमारा स्वस्थ शरीर ही सभी तरह के ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। शरीर के नष्ट हो जाने पर संसार की सभी वस्तुयें बेकार हैं। यदि स्वस्थ शरीर है तो सभी प्रकार के सुखों का आनन्द लिया जा सकता है। दुनिया में आयुर्वेद ही एक मात्र शास्त्र या चिकित्सा पद्धति है जो मनुष्य को निरोगी जीवन देने की गारंटी देता है। बाकी अन्य सभी चिकित्सा पद्धतियों में "पहले बीमार बनें फिर आपका इलाज किया जायेगा", लेकिन गारंटी कुछ भी नहीं है। आयुर्वेद एक शाश्वत एवं सातत्य वाला शास्त्र है। इसकी उत्पत्ति सृष्टि के रचियता श्री ब्रह्माजी के द्वारा हुई ऐसा कहा जाता है। ब्रह्माजी ने आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति को दिया। श्री दक्ष प्रजापति ने यह ज्ञान अश्विनी कुमारों को दिया। उसके बाद यह ज्ञान देवताओं के राजा इन्द्र के पास पहुँचा। देवराजा इन्द्र ने इस ज्ञान को ऋषियों–मुनियों जैसे आत्रेय, पुतर्वसु आदि को दिया। उसके बाद यह ज्ञान पृथ्वी पर फैलता चला गया। इस ज्ञान को पृथ्वी पर फैलाने वाले अनेक महान ऋषि एवं वैद्य हुये हैं। जो समय–समय पर आते रहे और लोगों को यह ज्ञान देते रहे हैं। जैसे चरक ऋषि, सुश्रुत, आत्रेय ऋषि, पुनर्वसु ऋषि, काश्यप ऋषि आदि–आदि। इसी श्रृंखला में एक महान ऋषि हुये वाग्भट्ट ऋषि जिन्होंने आयुर्वेद के ज्ञान को लोगों तक पहुँचाने के लिये एक शास्त्र की रचना की, जिसका नाम "अष्टांग हृदयम्"।

इस अष्टांग हृदयम् शास्त्र में लगभग 7000 श्लोक दिये गये है। ये श्लोक मनुष्य जीवन को पूरी तरह निरोगी बनाने के लिये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में कुछ श्लोक, हिन्दी अनुवाद के साथ दिये जा रहे हैं। इन श्लोकों का सामान्य जीवन में अधिक से अधिक उपयोग हो सके इसके लिये विश्लेषण भी सरल भाषा में देने की कोशिश की गयी है।

प्रथम अध्याय

अथातोऽर्शसां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः।।

अर्थ : मदाव्यय चिकित्सा व्याख्यान के बाद अर्श चिकित्सा का व्याख्यान करेंगे ऐसा आत्रेयादि महर्षियों ने कहा था।

अर्श रोग में क्षार, दाह तथा भास्त्र कर्म का उपक्रम–

काले साधरणे व्यभ्रे नातिदुर्बलमर्शसम्।
विशु0कोष्ठं लघ्वल्पमनुलोमनमाशितम्।।
शुचिं कृतस्वस्त्ययनं मुक्तविण्मूत्रमव्यथम्।
भायने फलके वाऽन्य–नरोत्सगे व्यपाश्रितम्।।
पूर्वेण कायेनोतानं प्रत्यादित्यगुदं समम्।
समुन्नतकटीदेशमथ यन्त्रणवाससा।।
सक्थ्नोः शिरोधरायां च परिक्षिप्तमृजुस्थितम्।
आलम्बितं परिचरैः सर्पिशाऽभ्यक्तपायवे।।
ततोऽस्मै सर्पिषाऽभ्यक्तं निदध्यादृजु यन्त्रकम्।
भानैरनुसुखं पायौ ततो दृष्ट्वा प्रवाहणात्।।
यन्त्रे प्रविष्टं दुर्नाम प्लोतगुण्ठितयाऽनु च।
भालाकयोत्पीड्य भिशग् यथोक्तविधिना दहेत्।।
क्षारेणैवार्द्रमितरत्क्षासेण ज्वलनेन वा।
महद्वा बलिनश्छित्त्वा वीतयन्त्रमथातुरम्।।
स्वभ्युक्तपायुजघनमवगाहे निधापयेत्।
निर्वातमन्दिरस्थस्य ततोऽस्याचारमादिशेत्।।
एकैकमिति सप्ताहात्सप्ताहात्समुपाचरेत्।

अर्थ : साधारण समय (श्रावण, कार्तिक, चैत्र माह या शरद वसन्त ऋतु) में आकाश में बादल न रहने पर यदि रोगी अधिक दुर्बल न हो तो वमन–विरेचन द्वारा कोष्ठ शुद्ध कर तथा हल्का थोड़ा तथा अनुलोमक (मल प्रवर्तक) भोजन खिलाकर, स्नान आदि से पवित्र, स्वस्ति वाचन आदि कराकर, मल–मूत्र त्याग से निवृत्त व्यथा रहित, अर्श के रोगी को शयन फलक (शयन की चौकी) पर या किसी मनुष्य की गोदी में बैठाकर शरीर का उपरि भाग उत्तान तथा सूर्य के समाने गुदा को स्थिर कर, यन्त्र या वस्त्र से कटिप्रदेश को ऊँचा कर, दोनों

टाँगों को कन्धे के ऊपर रखकर, सीधा बैठे हुए रोगी को परिचरो द्वारा पकड़े रहने पर घृत से गुदा स्निग्ध कर तथा घृत के द्वारा सीधा यन्त्र को चिकना बनाकर धीरे–धीरे सुखपूर्वक गुदा में प्रवेश करे। इसके बाद प्रवाहण करने पर मस्सा को देखकर यन्त्र में प्रविष्ट मस्सा को रूई से लपेटी हुई शलाका से उठा कर यथोक्त विधि से गीले मस्सा (रक्तज़ तथा कफज) को, क्षार से तथा इतरत् (वातज) मस्सा को क्षार तथा अग्नि से दग्ध करे। यदि मस्से बड़े हो और रोगी बलवान् हो तो मस्से को काटकर दग्ध करे। यन्त्र को निकालने के बादरोगी के गुदा तथा जघन प्रदेश में मालिश करने के बाद हवा रहित कमरे में स्थित गरम जल के टब में बैठाकर स्वेदन करे। इसके बाद शल्य विधि के नियमानुसार रखे। इस प्रकार एक–एक मस्से को सात–सात दिन बाद दग्ध करे या छेदन करे।

अर्श रोग में क्षारादि कर्म का क्रम–

प्राग्दक्षिणं ततो वाममर्शः पृष्ठाग्रजं ततः।।
बह्वर्शसः सुदग्धस्य स्याद्वायोरनुलोमता।
रूचिरन्नेऽग्निपटुता स्वास्थ्यं वर्णबलोदयः।।

अर्थ : यदि मस्से अधिक हो तो पूर्वोक्त विधि के अनुसार पहले दक्षिण भाग के मासीकुर (मस्सा पर) बाद में वाम भाग के मासांकुर (मस्सा) पर पुनः पृष्ठ भाग के मस्से पर तदनन्तर अग्र भाग के मस्से पर दग्ध कर्म या छेदन करे। अर्श के मासांकुरों को अच्छी तरह दग्ध कर देने पर वायु का अनुलोमन हो जाता है और भोजन करने में रूचि, जाठराग्नि प्रदीप्त, स्वस्थता तथा बल एवं वर्ण की वृद्धि होती है।

अर्श के उपद्रवों की चिकित्सा–

बस्तिशूले त्वधो नाभेर्लेपयेच्छ्लक्ष्णकलिकतैः।
वर्षाभू–कुष्ठ–सुरभि–मिशि–लोहाऽमराह्वयैः।।
शकृन्मूत्रप्रतीघाते परिषेकावगाहयोः।
वरणाऽलम्बुशैरण्ड–गोकण्टकपुनर्नवैः।।
सुषवीसुरभीभ्यां च क्वाथमुष्णं प्रयोजयेत्।
सस्नेहमथवा क्षीरं तैलं वा वातनाशनम्।।
युज्जीतान्नं भाकृद्भेदि स्नेहान् वातघ्नदीपनान्।

अर्थ : अर्श के रोगी के वस्ति प्रदेश में शूल होने पर नाभि के नीचे रक्त पुनर्नवा, कूट, तुलसी, सोआ, अगर, देवदारू समभाग इन सबों के महीन कल्क से लेप करे। यदि मल तथा मूत्र की रूकावट हो गई हो तो वरूण के छाल, गोरक्षमुण्डी, एरण्ड की जड़ गोखरू, गदहपूरना, करैला तथा तुलसी के

क्वाथ को परिसेचन तथा अवगाहन में प्रयोग करें। अथवा स्नेह युक्त दूध या वातनाशक (महानारायन, विषगर्भ आदि) तैल का प्रयोग करे और मलभेदक आहार तथा वातनाशक तथा जाठराग्नि दीपक स्नेह का प्रयोग करे।

दाहादि कर्म के अयोग्य अर्श की चिकित्सा–

अथाऽप्रयोज्यदाहस्य निर्गतान् कफवातजान्।।
संस्तम्भकण्डुरूक्शोफानभ्यज्य गुदकीलकान्।
बिल्वमूलाग्निकक्षारकुष्ठैः सिद्धेन सेचयेत्।।
तैलेनाऽहिविडालोष्ट्र–वराहवसयाऽथवा।
स्वेदयेनु पिण्डेन द्रवस्वेदेन वा पुनः।।
सक्तूनां पिण्डिकाभिर्वा स्निग्धानां तैलसर्पिषा।
रास्नाया हपुषाया वा पिण्डैर्वा कार्ष्ण्यगन्धिकैः।।

अर्थ : क्षार, शस्त्र तथा दाह कर्म के अयोगय अर्श के रोगी के निकले हुए स्तब्धता, कण्डू, वेदना तथा शोथ वाले अर्श के गुदांकुरों को बेल की जड़, चित्रक, यवक्षार तथा कूट समभाग इन द्रव्यों के कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत् सिद्ध तैल से अभ्यजन कर सेचन करे। अथवा साँप, विलाव, ऊँट या सुअर की वसा से स्वेदन करे। इसके बाद पिण्ड स्वेद या द्रव स्वेद से स्वेदन करे। अथवा तैल घृत से स्निग्ध सत्तू के पिण्ड से या रास्ना के पिण्ड या हाउवेर के पिण्ड से या सहिजन की छाल के कल्कपिण्ड से स्वेदन करे।

अर्श में धूपन योग–

अर्कमूलं भामीपत्रं नृकेशाः सर्पकञ्चुकम्।
माजरिचर्म सर्पिश्च धूपनं हितमर्शसाम्।।
तथाऽश्वगन्धा सुरसा बृहती पिप्पली घृतम्।

अर्थ : अर्श के रोगियों के अर्शांगकुरों में मदार की जड़, शमीपत्र, मनुष्य के माथे का बाल, सांप की केचुल, बिलाव का चर्म तथा घृत इन सबों का धूप देना हितकर होता है। अथवा असगन्ध, तुलसी, वनभण्टा, पीपर तथा घृत का धूप अर्श में हितकर है।

अर्श में अर्शशातन वर्ति–

धान्याम्लपिश्टैर्जीमूतबीजैस्तज्जालकं मृदु।।
लेपितं छायया शुष्कं वर्तिर्गुदजशातनी।
सजालमूलजीमूतलेहे वा क्षारसंयुते।।
गुञ्जासूरणकूष्माण्डबीजैर्वर्तिसतथागुणा।

अर्थ : तितलौकी के बीज तथा मुलायम जाला को काञ्जी के साथ पीसकर

जीमूतक के बहिर्भाग में लेप कर तथा छाया में सुखकर वर्ति बनावे और गुदा में लगावे। यह अर्श को गिराता है। अथवा तिंतलौकी की जाला तथा मूल को पीसकर उसके लेहवत् कल्क में यवक्षार, रती, सूरन, तथा सफेद कोहड़ा काली का चूर्ण मिलाकर बनाई हुई वर्ति अर्श के गुदांकुरों को गिराती है।

अर्श के अंकुरो पर विविध लेप–

स्नुक्क्षीरार्द्रनिशालेपस्तथा गोमूत्रकल्कितैः।।
कृकवाकुशकृत्कृष्णानिशागुञ्जाफलैस्तथा।
स्नुक्क्षीरपिष्टैः शङ्ग्रन्थाहलिनीवारणास्थिभिः।।
कुलीरशृङीविजयाकुष्ठारूष्करतुत्थकैः।
शिग्रुमूलकजैर्बीजैः पत्रैरश्वघ्ननिम्बजैः।।
पीलुमूलेन बिल्वेन हिङ्गुना च समन्वितैः।
कुष्ठं शिरीषबीजानि पिप्पल्यः सैन्धवं गुडः।।
अर्कक्षीरं सुधाक्षीरं त्रिफला च प्रलेपनम्।
आर्कं पयः स्नुहीकाण्डं कटुकालाबुपल्लवाः।।
करञ्जो बस्तमूत्रं च लेपनं रेष्ठमर्शसाम्।
आनुविसनिकैर्लेपः पिप्पल्याद्यैश्च पूजितः।।

अर्थ : अर्श के अंकुरों पर सेंहुड़ के दूध के साथ पीसकर हल्दी को लेप करे। मुर्गा का पुरीष, पीपर, हल्दी तथा गुंज्जा फल को गोमूत्र के साथ पीसकर उसके कल्क से लेप करे। वच, कलिंहारी तथा हाथी की हड्डी को सेंहुड़ के दूध के साथ पीसकर लेप करें। काकड़ा, सिंधी, भांग, कूट, भिलावा तथा तूलिया इन सबों को सेहुड़ के दूध के साथ पीसकर लेप करे। सहिजन तथा मूली के बीज, कनेर तथा नीम के पत्त, पीलु वृक्ष की जड़, बेल की गूदी तथा हींग इन सबों को गोमूत्र के साथ पीसकर लेप लगाये। कूट, सिरिष का बीज, पीपर, सेन्धा नमक तथा गुड़ एवं त्रिफला के चूर्ण को मंदार का दूध तथा सेंहुड़ के दूध में लेप बनाकर लगाये। मदार का दूध, सेंहुड़ की तना और कड़वी लौकी का पत्ता तथा करंज्ज इन सबों को बकरी के दूध के साथ पीसकर लेप करे। ये अर्श रोग में हितकर हैं। अथवा पीपर तथा मदन फल आदि अनुवासनिक द्रव्यों का लेप अर्श रोग में हितकर है।

अर्श के ऊपर अभ्यगं–

एभिरेवौषधैः कुर्यात्तैलान्यभ्यञ्जनानि च।

अर्थ : पूर्वोक्त लेपन की औषधियों के कल्क तथा क्वाथ से विधिवत् सिद्ध तैलों का अर्श के ऊपर अभ्यज्जन करे।

अर्श रोग में धूपन अभ्यज्जनादि का फल–

धूपनालेपनाभ्यगंः प्रस्रवन्ति गुदाङ्कुराः।।
सञ्चितं दुष्टरूधिरं ततः सम्पद्यते सुखी।

अर्थ : गुदांकुर (अर्श के मस्से) पूर्वोक्त धूपन, आलेपन तथा अभ्यगं से संञ्चित दूषित रक्त को स्राव करा देते हैं। इस के बाद अर्श का रोगी सुखी हो जाता है।

अर्श रोग में जलौका आदि से रक्त निकालने की अवस्था–

अवर्तमानमुच्छूनकठिनेभ्यो हरेदसृक्।।
अर्शोभ्यो जलजाशसत्रसूचीकूचैः पुनः पुनः।

अर्थ : शोय युक्त तथा कठिन अर्श के मासांकुर से रक्त के धूपनादि द्वारा न निकलने पर जोंक, शस्त्र, सूची तथा कूर्च से बार–बार रक्त निकाले।

रक्त मोक्षण में हेतु–

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्न व्याधिरूपशाम्यति।।
रक्ते दुष्टे भिषक् तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत्।

अर्थ : रक्त के दूषित होन पर अर्श रोग शीत, उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्ष आदि उपचार से नहीं शान्त होता है अतः रक्त का ही निर्हण करे।

विश्लेशण : अर्श दोषों द्वारा त्वचा मांस तथा मेदा दूषित कर गुदा आदि स्थानों में मांसाकुर उत्पन्न होते हैं। इसमें रक्त का दूषित होना नहीं पाया जाता है। अतः ऊपर बताये गये चिकित्सा से अंकुर नष्ट हो जाता हैं। यदि इससे दूषित रक्त का शमन हो जाय तो इन चिकित्साओं से अच्छा नहीं होता तब यह समझना चाहिए कि रक्त भी दूषित हो गया है। अत रक्त निकालने की विभिन्न विधियों का प्रयोग करे।

अर्श रोग में तक्र का प्रयोग–

यो जातो गोरसः क्षपीराद्वह्निचूर्णावचूर्णितात्।।
पिबंस्तमेव तेनैव भुञ्जानो गुदजान् जयेत्।
कोविदारस्य मूलानां मथितेन रजः पिबेत्।।
अश्नन् जीर्णे च पथ्यानि मुच्यते हतनामभिः।

अर्थ : चित्रक चूर्ण मिश्रित दूध से जो गोरस (मट्ठा) निकलता है, इसको पीने तथा उसी के साथ भोजन करने से अर्श रोग को जीत लेता है। अथवा को–विदार (कचनार) की जड़ का चूर्ण मट्ठा के साथ पान करे और इसके पच जाने पर पथ्य आहार सेवन करने से रोगी अर्श रोग से मुक्त हो जाता है।

अर्श रोग में तक्र (मट्ठा) का विविध प्रयोग–

गुदश्वयथुशूलार्तो मन्दाग्निर्गौल्मिकान् पिबन्।।

हिङ्ग्वादीननुतक्रां वा खादेद्गुडहरीतकीम्।
तक्रेण आ पिबेत्पथ्यावेल्लाग्निकुटजत्वचः।।
कलिगमगधाज्योतिःसूरणान् वांऽशवर्धितान्।
कोष्णाम्बुना वा त्रिपटुव्योषहिङ्ग्वम्लवेतसम्।।
युक्तं बिल्व–कपित्थाभ्यां महौषधबिडेन वा।
आरूष्करैर्यवान्या वा प्रदद्यात्तक्रतर्पणम्।।
दद्याद्वा हपुषाहिङ्गुचित्रकं तक्रसंयुतम्।
मासं तक्रानुपानानि खादेत्पीलुफलानि वा।।
पिबेदहरहस्तक्रं निरन्नो वा प्रकामतः।
अत्यर्थमन्द–कायाग्नेस्तक्रमेवावचारयेत्।।
सप्ताहं वा दशाहं वा मासार्ध मासमेव वा।
बलकालविकारज्ञो भिषक् तक्रं प्रयोजयेत्।।
सांय वा लाजसक्तूनां दद्यातक्रावलेहिकाम्।
जीर्णे तक्रे प्रदद्याद्वा तक्रपेयां ससैन्धवाम्।
तक्रानुपानं सस्नेहं तक्रोदनमतः परम्।
यूषं रसैर्वातक्राढ्यैः शालीन् भुञ्जीत मात्रया।।
रूक्षमर्धोद्धृतसनेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम्।
तक्र दोषाग्निबलवत्त्रिविधं तत्प्रयोजयेत्।।
न विरोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहताः।
निषिक्तं तद्विदहति भूमावपि तृणोलुपम्।।
स्रोतःसु तक्रशुद्धेशु रसो धातूनुपैति यः।
तेन पुष्टिर्बलं वर्णः परं तुष्टिश्च जायते।।
वातश्लेष्मविकाराणां भातं च विनिवर्तते।
मथितं भाजने क्षुद्रवृहतीफललेपिते।।
निशा पर्युषितं पेयमिच्छद्भिर्गुदजक्षयम्।

अर्थ : गुदा में शोथ तथा शूल से पीड़ित अर्श का रोगी गुल्म रोग विकर में कहे जाने वाले हिंग्वादि चूर्ण को तक्र के साथ खायें अथवा गुड़ तथा हर्रे का योग तक्र के अनुपान के साथ खायें। अथवा हर्रे, वायविंडग, चित्रक, तथा कुटज (इन्द्र जौ) के चूर्ण को तक्र के साथ पान करे अथवा अंशवर्द्धित इन्द्र जौ एक भाग, पीपर दो भाग चित्रक तीन भाग तथा सूरण कन्द का चूर्ण चार भाग इन सबों को गरम जल से पान करे। अथवा सेन्धा सौवर्चल तथा विड नमक व्योष (सोंठ, पीपर तथा मरिच) हींग तथा अम्ल बेंत इन सबों का चूर्ण गरम जल से पान करे। अथवा वेल के गूदा तथा कपित्थ के गूदा के चूर्ण के साथ या सोंठ तथा विड नमक के चूर्ण के साथ अथवा शुद्ध भिलावा के

चूर्ण के साथ अथवा अजवायन के चूर्ण साथ पेट भर मट्ठा पान कराये। अथवा हाऊवेर, हींग तथा चित्रक का चूण्र तक्र के साथ खिलाये। अथवा पीलू वृक्ष के फल को तक्र के अनुपान से भक्षण करे अथवा अन्न को छोड़कर अपनी इच्छा के अनुसार प्रतिदिन केवल मट्ठा पान करे। अत्यधिक मन्द जाठराग्नि वाला अर्श का रोगी केवल तक्र पान करे। बल, काल तथा विकार को जानने वाला वैद्य एक सप्ताह या दशदिन, या पन्द्रह दिन या एक मास प्रयोग करे। अथवा सायंकाल धान के लावा के सत्तू को तक्र में मिलाकर अवलेह बनाकर प्रयोग करे। अथवा सत्तू अवलेहिका के पकजाने पर सेन्धा नमक मिलाकर तक्र पेया का प्रयोग करे। इसके बाद स्नेहयुक्त तक्र के अनुपान के साथ तक्र तथा भात भक्षण कराये। अथवा अधिक मद्य मिलाकर मूंग का यूष के साथ मात्रा पूर्वक जड़हन धान का भात खायें। रूक्ष तक्र (पूर्ण घृत निकाला हुआ, आधा घृत निकाला हुआ तक्र तथा बिना घृत निकाला हुआ तक्र इन तीन प्रकार से तक्र) को दोष, तथा अग्नि बल के अनुसार प्रयोग करे। जिस प्रकार जमीन के कुशा के मूल में मट्ठा देने से कुशा समूल नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार तक्र के प्रयोग से नष्ट अर्श के गुदांकुर पुनः नहीं उत्पन्न होते हैं। तक्र से स्रोतसों के शुद्ध हो जाने पर शरीर में जो रस धातु बनता है उससे उतम पुष्टि बलवण्र तथा मन की संतुष्टि होती है और सैकड़ों वात–कफज विकार दूर हो जाते हैं। गुदांकुरों के क्षय के चाहनेवाले अर्श के रोगी कटेरी फल के कल्क से लिप्त मिट्टी के पात्र में एक रात का रखा हुआ मद्य पान करे।

अर्श रोग में तक्रारिष्ट–

धान्योपकुञ्चिकाऽजाजीहपुषापिप्पलीद्वयैः।।
कारवीग्रन्थिकशठीयवान्यग्नियवानकैः।
चूर्णितैर्घृतपात्रस्थं नात्यम्लं तक्रमासुतम्।।
तक्रारिष्टं पिबेज्जातं व्यक्ताम्लकटु कामतः।
दीपनं रोचनं वर्ण्यं कफवातानुलोमनम्।।
गुदश्वयथुकण्ड्वर्तिनाशनं बलवर्धनम्।

अर्थ : धनियाँ, मगरैला, जीरा, हाऊबेर, पीपर, गज पीपर, सौंफ, पिपरामूल, कचूर, अजवायन, चित्रक तथा अजमोद समभाग इन सबों के चूर्ण के साथ घृत स्निग्ध पात्र में थोड़ा मट्ठा को (एक सप्ताह) रखकर आसवीकरण करे। यह तक्रारिष्ट है। इस अम्ल तथा कटुरस प्रधान तक्रारिष्ट को अपनी इच्छा के अनुसार पान करे। यह ज़ाठराग्नि दीपक, रोचक, वर्ण कारक, कफ तथा वातानुलोमक गुदा का शोथ, कण्डू तथा पीड़ा को नाश करने वाला और बलवर्द्धक है।

अर्श रोग में चित्रक तक्र तथा गाडी तक्र–

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत्।।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत्।
भार्गर्यास्फोतामृतापच्चकोलेष्वप्येष संविधिः।।

अर्थ : चित्रक मूल की त्वचा को पीसकर मिट्टी के घड़ा के अन्दर लेप करे और उस में दूध तक्र या दही बनावे और निकाल कर पान करे। यह अर्श रोग को नाश करता है। अथवा भारंगी, सारिवा, गुडूची, तथा पच्चकोल (पीपर, पिपरामूल चव्य, चित्रक तथा सोंठ) इन सबों के कल्क से मिट्टी के घड़ा के अन्दर लेप लगाकर उसमें मट्ठा तथा दही बनावे और निकालकर पान करे। यह भी अर्श रोग को नष्ट करता है।

अर्श जन्य अतिसार में पेया आदि का विधान–

पिष्टैर्गजकणापाठाकारवीपच्चकोलकैः।
तुम्बर्वजाजीधनिकाबिल्वमध्यैश्च कल्पयेत्।।
फलाम्लान् यमकस्नेहान् पेयायूषरसादिकान्।
एभिरेवौषधैः साध्यं वारि सर्पिश्च दीपनम्।।
क्रमोऽयं भिन्नशकृतां वक्ष्यते गाढवर्चसाम्।

अर्थ : गजपीपर, पाठा, मंगरैल, पच्चकोल (पीपर पिपरा–मूल, चव्य, चित्रक तथा सोंठ) तुम्बरू (तेजबल) जीरा, धनिया तथा बैल का गूदा समभाग इन सबों के कल्क के साथ अनार आदि अम्ल पदार्थ तथा तैल घृत मिलाकर पेया, यूष आदि सिद्ध करे। और इन्हीं औषधों के साथ जल पकाकर तथा घृत सिद्ध कर प्रयोग करे। यह जाठराग्नि दीपक है। यह योग अर्श रोग में अतिसार होने पर प्रयोग करने का विधान है। जिन अर्श रोगियों का विवन्ध (सूखामल) होता है। उनका उपचार आगे कहेंगे।

अर्श रोग में मलविबन्ध (गाढामल) की चिकित्सा–

स्नेहाढयैः सक्तुभिर्युक्तां लवणां वारूणी पिबेत्।।
लवणा एव वा तक्रसीधुधान्याम्लवारूणीः।

अर्थ : अर्श रोग में मल के कठिन (कड़ा) होने पर अधिक स्नेह (घृत, तैल आदि) से युक्त सत्तुवों तथा लवण मिश्रित वारूणी का पान करे। अथवा केवल सत्तू के बिना तक्र, सीधु, कांज्जी तथा वारूणी में सेन्धा नमक मिलाकर पान करे।

अर्श में मल वातानुलोमक योग–

प्राग्भक्तं यमके भृष्टान् सक्तुभिश्चावचूर्णितान्।।
करज्जपब्लवान् खादेद्वातवर्चोऽनुलोमनान्।

अर्थ : करंज्ज के हर्रे पत्तों को घी तथा तैल में भूनकर तथा सत्तू को पत्तों पर बुरक कर वात तथा मल को अनुलोमन करने वाले इस योग को भोजन के पहले मात्रा पूर्वक खाये।

अर्श में विविध योग–

सगुडं नागरं पाठां गुड–क्षार–घृतानि वा।।
गोमूत्राध्युषितामद्यात्सगुडां वा हरीतकीम्।

अर्थ : गाढ़ विट्क अर्श रोग में सोंठ तथा पाठा का चूर्ण गुड़ के साथ खायें अथवा गुड़, दूध, तथा घृत खायें अथवा गोमूत्र में रातभर रक्खी हर्रेको गुड़ के साथ खाय।

कफज अर्श आदि में हरीतकी योग–

पथ्याशतद्वयान्मूत्रद्रोणेनाऽऽमूत्रसङ्क्षयात्।।
पक्वान् खादेत्समधुनी द्वे द्वे हन्ति कफ़ोद्भवान्।
दुर्नाम–कुष्ठ–श्वयथु–गुल्म–मेहोदर–क्रिमीन्।।
ग्रन्थ्यर्बुदापचीस्थौलय–पाण्डुरोगाऽऽढयमारुतान्।

अर्थ : दो सौ पपिक्व हरीतकी को गोमूत्र एक दोण (16 किलो) में पकावे। जब मूत्र जल जाय तब निकाल कर उसमें से दो दो हरीतकी मधु के साथ खायें। यह कफजन्य अर्श रोग, कुष्ठ, शोथ, गुल्म रोग, प्रमेह, उदररोग, क्रिमिरोग, ग्रन्थि, अर्वुद, अपची, स्थौल्य, पाण्डुरोग तथा आढय वात (उरू स्तम्भ) को नष्ट करता है।

अर्शरोग में विविध योग–

अजश्रृंडीजटाकल्कमजामूत्रेण यः पिबेत्।।
गुडवार्ताकभुक्तस्य नश्यन्त्याशु गुदाङ्कुराः।
श्रेष्ठारसेन त्रिवृतां पथ्यां तक्रेण वा सह।।
पथ्यां वा पिप्लीयुक्ता घृतभृष्टां गुडान्विताम्।
अथवा सत्रिबृद्दन्तीं भक्षयेदनुलोमनीम्।।
हते गुदाश्रये दोषें गुदजा यान्ति सङ्क्षयम्।
दाडिमस्वरसाजाजी–यवानीगुडनागरैः।।
पाठया वा युतं तक्रं वातवर्चोऽनुलोमनम्।
सीधुं वा गौडमथवा सचित्रकमहौषधम्।।
पिबेत्सुरां वा हपुषापाठासौवर्चलान्विताम्।

अर्थ : काकड़ा सिंघी के मूल के कल्क को जो बकरी के मूत्र के साथ पान करता है और गुड़युक्त बड़ी कटेरी के फल को खाता है उस अर्श रोगी के गुदांकुर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। अथवा त्रिफला के क्वाथ के साथ निशोथ का चूर्ण अथवा हर्रे का चूर्ण मट्ठा के साथ अथवा घी में भूना हर्रे को पीपर

तथा गुड़ के साथ अथवा निशोथ तथा दन्ती के जड़ को खायें। ये सब वातानुलोमक है। गुदा प्रदेश में स्थित दोषों के नष्ट हो जाने पर अर्श के गुदांकुर नष्ट हो जाते हैं। अनार का रस, जीरा, अजवायन, गुड़, सोंठ इन सबों का चूर्ण या पाठा का चूर्ण मिलाकर मट्ठा पान करे। यह वात तथा पुरीष को अनुलोमन करने वाली है। अथवा चित्रका तथा सोंठ का चूर्ण मिलाकर सीधु तथा गुड़ के बने मद्य अथवा हाऊबेर पाढा तथा सौवर्चल नमक का चूर्ण मिलाकर सुरापान करें।

तिलयुक्त वर्द्धमान पिप्पली—

दशादिदशकैर्वृद्धाः पिप्पलीर्द्विपिचुं तिलान्।।
पीत्वा क्षीरेण लभते बलं देहहुताशयोः।

अर्थ : दश पीपर से प्रारम्भकर दश—दश पीपर प्रतिदिन बढ़ाते हुए (दसदिन तक) तथा तिल दोपिचु (दो कर्ष 200 ग्रा.) दूध के साथ पीकर अर्श का रोगी, शरीर बल तथा अग्नि बल को प्राप्त करता है।

विश्लेषण : यह वर्द्धमान पिप्पली योग है। जो मात्रा यह लिखी गई है वह वर्तमान काल के मानव के लिये उपयुक्त नहीं है। अतः इसका प्रयोग एक पिप्पली से प्रारम्भ कर दस तक और तिल 10 ग्राम लेना चाहिए। यह योग बहुत ही लाभादायक और बलवर्द्धक है। तिल को प्रतिदिन बढ़ाने का कोई औचित्य नहीं। तिल प्रति दिन 10 ग्राम से अधिक नहीं लेना चाहिए।

अर्शरोग में पाठा का प्रयोग—

दुःस्पर्शकेन बिल्वेन यवान्या नागरेण वा।।
एकैकेनाऽपि संयुक्ता पाठा हन्त्यर्शसां रूजम्।

अर्थ : यवासा, बिल्व, अजवायन या सोंठ इन सबों में किसी एक के साथ पाठा का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से अर्श की पीड़ा को नष्ट करता है।

अभयाऽरिष्टः।

अर्श रोग में अभयारिष्ट—

सलिलस्य वहे पक्त्वा प्रस्थार्धमभयात्वचम्।।
प्रस्थं धात्र्या दशपलं कपित्थानां ततोऽर्धतः।
विशालां रोध्रमरिचकृष्णावेल्लैलवालुकम्।।
द्विपलांशं पृथक्पादशेषे पूते गुडात्तुले।
दत्त्वा प्रसीं च धातक्याः स्थ्ज्ञापयेद् घृतभाजने।।
पक्षात्स भीलितोऽरिश्टः करोत्यग्नि निहन्ति च।
गुदजग्रहणीपाण्डुकुष्ठोदरगरज्वरान्।।

श्वयथुप्लीहहृद्रोगगुल्मयक्ष्मवमिक्रिमीन्।

अर्थ : जल एक वह (लगभग 64 किलो) में हर्रेका वल्कल आधा प्रस्थ (ल. 500 ग्राम) आँवला एक प्रस्थ (1 किलो) कैथ दस पल (500 ग्राम) इन्द्रायण, कपित्थ के आधा पाँच पल (250 ग्राम) लोध, मरिच, पीपर, वाय विडगं तथा एलुआ प्रत्येक दो पल (100 ग्राम) इन सबों को पकावे। चौथाई शेष रहने पर छान ले और गुड़ एक तुला (5 किलो) तथा धाय का फूल एक प्रस्थ (1 किलो) मिलाकर घृत स्निग्ध भाण्ड में पन्द्रह दिन तक रक्खे। इसके बाद निकाल कर छानें और अरिष्ट सेवन करें। यह अभयारिष्ट जाठराग्नि को तीव्र करता है और अर्शरोग, ग्रहणी विकार, पाण्डु, कुष्ठरोग, उदररोग, ज्वर, शोथ प्लीहा, हृदयरोग, गुल्मरोग, यक्ष्मारोग वमन तथा क्रिमिरोग को नष्ट करता है।

अर्श में दन्त्यरिष्ट–

जलद्रोणे पचेद्दन्तीदशमूलवराग्निकान्।।
पालिकान्पादशेषे तु क्षिपेद्गुडतुलां परम्।
पूर्ववत्सर्वमस्य स्यादानुलोमितरस्त्वयम्।।

वात में मद्य के साथ, वात राग में प्रसन्ना के साथ, विबन्ध (मलावरोध) में दधि ामण्ड के साथ, अर्श का रोगी अनार के रस के साथ, परिकर्तिका रोग में वृक्षाम्ल रस के साथ, अजीर्ण में गरम जल के साथ और भगन्दर, पाण्डुरोग, कास, श्वास, जलग्रह, ह्रद्रोग, ग्रहणी विकार, कुष्ठरोग, मन्दाग्नि, ज्वर, दन्तविष, मूलविष, गरविष तथा कृत्रिम विष में रोगानुसार अनुपान के साथ प्रयोग करे। यह चूर्ण विरेचन के लिए स्नेहन के द्वारा कोष्ठ की शुद्धि हो जाने पर पान करना चाहिए।

हपुषादिकं चूर्णम्।

उदर रोग में हपुषादि चूर्ण–

हपुषां काच्चनक्षीरीं त्रिफलां नीलिनीफलम्।
त्रायन्तीं रोहिणीं तिक्तां सातलां त्रिवृतां वचाम्।।
सैन्धवं काल–लवणं पिप्पलां चेति चूर्णयेत्।
दाडिमत्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकैः।।
पेयोऽयं सर्वगुल्मेषु प्लीह्नि सर्वोदरेषु च।
श्वित्रे कुष्ठेष्वजरके सदने विषमेऽनले।।
शोफार्शः पाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके।
वातपित्तकफांश्चाशु विरेकेण प्रसाधयेत्।।

अर्थ : हाऊवेर, सत्यानासी के बीज, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) नील के फल, त्रायमाणा, कुटकी, सप्तपर्ण, निशोथ, वच, सेन्धा नमक, काला नमक

तथा पीपर समभाग इन सबका चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को अनार का रस, त्रिफला का क्वाथ, गोमूत्र तथा गरम जल से सभी प्रकार के गुल्म रोग में, प्लीहा वृद्धि, सभी उदर राग, श्वित्र, कुष्ठ रोग, अजीर्ण, अवसाद, विषमाग्नि, शोथ, अर्श, पाण्डु रोग, कामला तथा हलीमक में पान करे। यह चूर्ण विरेचन के द्वारा वात, पित्त तथा कफ को शान्त करता है।

उदर रोग में नीलिन्यादि चूर्ण–

नीलिनीं निचुलं व्योषं क्षारो लवणपच्चकम्।
चित्रकं च पिबेच्चूर्ण सर्पिषोदरगुल्मनुत्।।

अर्थ : नील के बीज, वेतस फल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), यवक्षार, लवण पंच्चक (सेन्धा, सौवर्चल, बिड़, साँभर, सामुद्र) तथा चित्रक समभाग इन सबका चूर्ण घृत के साथ सेवन करने से उदर रोग तथा गुल्मरोग को दूर करता है।

उदर रोग में शोधनान्तर दुग्ध का प्रयोग–

पूर्वच्च पिबेद्दुग्धं क्षामः शुद्धोऽन्तरान्तरा।
कारभं गव्यमाजं वा दद्यादात्ययिके गदे।।
स्नेहमेव विरेकार्थे दुर्बलेभ्यो विशेषतः।

अर्थ : शोधन के बाद दुर्बल तथा कृश रोगी बीच–बीच में गाय, बकरी या ऊंटनी का दूध पान करे। आत्यधिक रोग में विशेषकर दुर्बल व्यक्ति के लिए स्नेह विरेचन का प्रयोग करे।

अर्थ : तीन गुना पलाश के क्षार जल के साथ वत्सकादि गण का कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह उत्तम अर्श नाशक तथा जाठराग्नि दीपक है।

अर्श रोग में पच्च कोलादि घृत–

पच्चकोलाभयाक्षारयवानीबिडसैन्धवैः।।
सपाठाधान्यमरिचैः सबिल्वैर्दधिमद् घृतम्।
साधयेत् तज्जयत्याशु गुदवङ्क्षणवेदनाम्।।
प्रवाहिकां गुदभ्रंश मूत्रकृच्छ्ं परिस्रवम्।

अर्थ : पच्चकोल (पीपर, पिपरमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), हर्रे, यवक्षार, अजवायन, विडनमक, सैन्धा नमक, पाठा, धनिया, मरिच तथा बेलगिरि समभाग इन सबों के कल्क के साथ दधि मिलाकर घृतनिर्माण विधि के अनुसर घृत सिद्ध करे। यह घृत सेवन करने से गुदा तथा वक्षण प्रदेश की वेदना को शीघ्र ही दूर करता है। इसके अतिरिक्त प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ तथा परिस्रव (गुदा से पानी जाना) को दूर करता है।

अर्श रोग में पाठा दि घृत

पाठाजमोदधनिकाश्वदंष्ट्रापञ्चकोलकैः।।
सबिल्वैर्दधि चाङ्गेरीस्वरसे च चतुर्गुणे।
हन्त्याज्यं सिद्धमानाहं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम्।।
गुदभ्रंशार्तिगुदजग्रहणीगदमारुतान्।

अर्थ : पाठा, अजमोदा, धनिया, गोखरू, पञ्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) तथा बेलगिरि समभाग इन सबों के कल्क के साथ घृत के बराबर दही तथा घृत से चौगुना चौपत्तिया के स्वरस में घृत निर्माण विधि के अनुसार घृत सिद्ध करे। यह घृत आनाह, मूत्रकृच्छ, गुदभ्रंश, वेदना, अर्श, ग्रहणी रोग तथा वात विकार को नष्ट करता है।

विश्लेशण : यह घृत पाठा से प्रारम्भ किया गया है किन्तु चांगेरी का स्वरस प्रधान रूप से दिया गया है। अतः चांगेरी घृत कहा जाता है। यह गुदभ्रंश की अच्छा औषध है।

आहारं निरूपयति–

अर्श रोग में विविध शाकों का प्रयोग

वास्तुकाग्नित्रिवृद्दन्तीपाठाम्लीकादिपल्लवान्।
अन्यच्च कफवातघ्नं शाकं च लघु भेदि च।
सहिङ्गु यमके भृष्टं सिद्धं दधिसरैः सह।।
धनिकापञ्चकोलाभ्यां पिष्टाभ्यां दाडिमाम्बुना।
आर्द्रिकायाः किसलयैः शकलैरार्द्रकस्य च।।
युक्तमङ्गारधूपेन हृद्येन सुरभीकृतम्।
सजीरकं समरिचं बिडसौवर्चलोत्कटम्।।
वातोत्तरस्य रूक्षस्य मन्दाग्नेर्बद्धवर्चसः।
कल्पयेद्रक्तशालयन्नव्यञ्जनान् शाकवद् रसान्।।
गोगोधाछागलोष्टाणां विशेषात्क्रव्यभोजिनाम्।

अर्थ : वथुआ, चित्रक, निशोथ, दन्ती, पाठा तथा इमली आदि के मुलायम पत्तों के और कफ–वात नाशक, हल्का तथा मल भेदक शाकों के पत्तों के शाक को हींग का तड़का देकर घी तथा तैल में भूनकर सिद्ध करे। उसमें दही की मलाई और अनार के रस के साथ धनियाँ तथा पञ्चकोल को पीसकर मिला दें। इसी प्रकार धनिया के पत्ते, अदरक के टुकड़े मिलाकर तथा मन को प्रसन्न करने वाले अगरधूप से युक्त, सुगन्धित किया हुआ तथा जीरा, मरिच, विडनमक एवं सौर्वचल नमक मिलाकर तेज किया हुआ शाक वात की अधिकता वाले, रूक्ष प्रकृतिक मन्दाग्नि तथा मल विबन्ध वाले रोगी को सेवन

कराये। अर्श के रोगी के लिए लाल धान के चावल का भात व्यजंन (शाक आदि) को शाक की तरह हींग, मसाला, धनिया आदि मिलाकर बनावे तथा सेवन कराये।

पानं निरूपयति।

अर्श रोग में विविध पेय–

मदिरां शार्करं गौडं सीधुं तक्रं तुषोदकम्।।
अरिष्टं मस्तु पानीयं पानीयं वाऽल्पकं शृतम्।
धान्येन धान्यशुण्ठीभ्यां कण्टकारिकयाऽथवा।।
अन्ते भक्तस्य मध्ये वा वातवर्चोऽनुलोमनम्।

अर्थ : मद्य, चीनी का मद्य, गुड़ का मद्य, सीधु, तक्र, कांज्जी, अरिष्ट, दही का तोड़, अथवा थोड़ा गरम किया हुआ जल, अथवा धनिया के साथ पकाया जल, या धनिया तथा सोंठ के साथ पकाया जल अथवा कण्टकारी के साथ पकाया जल अर्श के रोगी को भोजन के अन्त में तथा बीच में दे। यह वात तथा मल को अनुलोमन करनेवाला है।

अनुलोमनमाह–

अर्श रोग में विड–वातादि के अनुलोमन का फल–

विड्वातकफपित्तानामानुलोम्ये हि निर्मले।।
गुदे शाम्यन्ति गुदजाः पावकश्चाभिवर्धते।

अर्थ : मल, वात, कफ तथा पित्त के अनुलोमन होने से गुदा के निर्मल हो जाने पर गुदज (अर्श के मस्से) शान्त हो जाते हैं तथा जाठराग्नि की वृद्धि होती है।

अर्श में अनुवासन विधि–

उदावर्तपरीता ये ये चात्यर्थं विरूक्षिताः।।
विलोमवाताः शूलार्तास्तेष्टिमनुवासनम्।

अर्थ : जो अर्श के रोगी उदावर्त से पीड़ित हों तथा अत्यन्त रूक्ष हों और वायु की विपरीत गति हो तथा शूल हो तो अनुवासन वस्ति का प्रयोग उत्तम है।

अनुवासन तैल निर्माण विधि–

पिप्पली मदनं बिल्वं भाताह्वां मधुकं वचाम्।।
कुष्ठं भार्टीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारू च।
पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम्।।
अर्शसां मूढवातानां तच्छेष्टमनुवासनम्।
गुदनिःसरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम्।।
कटयू रुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वङ्क्षणाश्रयम्।

पिच्छास्रावं गुदे शोफं वातवर्चोविनिग्रहम्।।
उत्थानं बहुशो यच्च जयेत्तच्चानुवासनात्।

अर्थ : पीपर, मदनफल, बेलगिरि, सौंफ, मुलेठी, वच, कूट, कचूर, पुष्कर मूला, चित्रक तथा देवदारू समभाग इन सब के कल्क के साथ तैल से दुगुना दूध ा मिलाकर तौल निर्माण विधि के अनुसार तैल सिद्ध करे। यह तैल अर्श तथा मूढवात के रोगी के लिए उत्तम अनुवासन है। यह तैल अनुवास देने से गुदा का निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्, प्रवाहिका, कटि, ऊर तथा पृष्ठ की दुर्बलता, वक्षण प्रदेश में स्थित आनाह, पिच्छास्राव, गुदा का शोथ, वात तथा पुरीष की रूकावट तथा रोगों का उपद्रव बार–बार होना इन सब को दूर करता है।

अर्श रोग में निरूहवस्ति का प्रयोग–
निरूहं वा प्रयुजजीत सक्षीरं पाच्वमूलिकम्।।
समूत्रस्नेहलवणं कल्कैर्युक्तं फलादिभिः।

अर्थ : अर्श रोग में पूर्वोक्त अनुवासन वस्ति का प्रयोग करे। अथवा पाच्वमूलिक (बृहत् पच्चमूल–बेंल की गिरि, अरणी, गम्भारी सोना, पाठा, पाढ़ल), मूल के क्वाथ में समभाग दूध, गोमूत्र, स्नेह, सेन्धानमक तथा मैनफल आदि के कल्कों को मिलाकर निरूह वस्ति का प्रयोग करे।

रक्तार्श में वातादि–अनुबन्ध के अनुसार चिकित्सा–
अथ रक्तार्शसां वीक्ष्य मारूतस्य कफस्य वा।।
अनुबन्धं ततः स्निग्धं रूक्षं वा योजयेद्धिमम्।

अर्थ : रक्तार्श में वात या कफ का अनुबन्ध देकर पुनः शीतल स्निग्ध या रूक्ष उपचार करें। (आर्द्र रक्तार्श को रक्तार्श कहते है) वातानुबन्धी अर्श में स्निग्ध तथा कफानु बन्धी अर्श में रूक्ष उपचार करे।

वात तथा कफानुबन्धी अर्श के लक्षण–
शकृच्छयावं खरं रूक्षमधो निर्याति नानिलः।।
कटयूरूगुदशूलं च हेतुर्यदि च रूक्षणम्।
तत्रानुबन्धो वातस्य श्लेष्मणो यदि विट् श्लथा।।
श्वेता पीता गुरूः स्निग्धा सपिच्छः स्तिमितो गुदः।
हेतुः स्निग्धगुरूर्विद्याद्यथास्वं चास्रलक्षणात्।।

अर्थ : मल श्याव वर्ण का खर तथा रूक्ष हो और वायु गुदा से बाहर न आती हो, कटि, ऊरू तथा गुदा प्रदेश में शूल हो और यदि अर्श का कारण रूक्ष हो तो रक्तार्श में वायु का अनुबन्ध समझना चाहिए। यदि मल ढीला, सफेद पीला, गुरू, स्निग्ध पिच्छिल तथा स्तिमित (भारी) हो और करूण स्निग्ध तथा गुरू

हो तो रक्तार्श में कफ का अनुबन्ध समझें और रक्तार्श के अपने लक्षणों के साथ वात तथा कफ का लक्षण समझें। अर्थात् यदि रक्त थोड़ा एवं पतला हो कालापन के साथ लाल हो तथा झाग युक्त हो तो वायु का अनुबन्ध और यदि अर्श कारक या रक्त गाढ़ा हो, लार युक्त हो तथा सफेदी के साथ लाल एवं चिपचिपा हो तो कफ का अनुबन्ध समझें।

रक्तार्श की चिकित्सा—

दुष्टेऽस्रे शोधनं कार्य लघंन च यथाबलम्।
यावच्च दोषैः कालुष्यं स्रुतेस्तावदुपेक्षणम्।।
दोषाणां पाचनार्थं च वह्निसन्धुक्षणाय च।
सङ्ग्रहाय च रक्तस्य परं तिक्तैरूपाचरेत्।।

अर्थ : अर्श रोग में रक्त के वातादि दोष से दूषित होने पर बल के अनुसार शोधन तथा लघंन करावे। जब तक वातादि दोषों के कारण कलुषता हो तब तक रक्तस्राव की उपेक्षा करे। रक्त की मलिनता समाप्त होने पर वातादि दोषों के पाचन, जाठराग्नि के प्रदीपन तथा रक्तस्राव को रोकने के लिए तिक्त रस वाले द्रव्यों से चिकित्सा करे।

यत्तु प्रक्षीणदोषस्य रक्तं वातोल्वणस्य वा।
स्नेहैस्तच्छोधयेद्युक्तैः पानाभ्यज्जनवस्तिषु।।

अर्थ : जिस व्यक्ति का दोष क्षीण हो और वात–प्रधान व्यक्ति हो यदि उसके अर्श से रक्त निकलता हो तो युक्ति पूर्वक स्नेह को पान, अभ्यंग तथा वस्ति कर्म में प्रयोग करे।

यत्तु पित्तोल्वणं रक्तं धर्मकाले प्रवर्तते।
स्तम्भनीयं तदेकान्तान्न चेद्वातकफानुगम्।।

अर्थ : यदि पित्त–प्रधान व्यक्तियों को गर्मी के दिनों में रक्त निकलता हो और वात तथा कफ का अनुबन्धन हो तो उसको शीघ्र ही न रोके।

कफार्श में रक्तस्तम्भन योग—

सकफेऽस्रे पिबेत्पाक्यं शुण्ठीं कुटजवल्कलम्।
किराततिक्तकं शुण्ठीं धन्वयासं कुचन्दनम्।।
दार्वीत्वङ्निम्बसेव्यानि त्वचं वा दाडिमोद्भवाम्।
कुटजत्वक्फलं तार्क्ष्यं माक्षिकं घुणवल्लभाम्।।
पिबेत्तण्डुलतोयेन कल्कितं वा मयूरकम्।

अर्थ : अर्श रोग में कफ मिश्रित रक्तस्राव होने पर सोठ तथा कुटज के छाल

का क्वाथ पान करें। अथवा चिरायता, सोंठ, यवासा, लाल चन्दन, दारूहल्दी, नीम की छाल तथा खस का क्वाथ पान करे। अथवा अनार के छाल की क्वाथ पान करे। अथवा कुटज, छाल तथा फल (इन्द्र यव), रसौत, मधु तथा अतीस को चावल के धोअन के साथ पान करे या चिड़चिड़ा के कल्क को चावल के धोअन में मिलाकर पान करें।

अर्श रोग में कुटजाद्यवलेह–

तुलां दिव्याम्भसि पचेदार्द्रायाः कुटजत्वचः।।
नीरसायां त्वचि क्वाथें दद्यात्सूक्ष्मरजीकृतान्।
समङ्गाफलिनीमोचरसान्मुष्टयं शकान्समान्।।
तैश्च शक्रयवान्पूते ततो दर्वीप्रलेपनम्।
पक्त्वाऽवलेहं तीढ्वा च तं यथाग्निबलं पिबेत्।।
पेयां मण्डं पयश्छागं गव्यं वा छागदुग्धभुक्।
लेहोऽयं शमयत्याशु रक्तातीसारपायुजान्।।
बलवद्रक्तपितं च स्रवदूर्ध्वमधोऽपि वा।

अर्थ : आर्द्र कुटज छाल एक तुला (5 किलो) लेकर उसको कूट ले और वर्षा का जल (या विमल जल) (20 किलो ग्राम) में पकावे। छाल के नीरस हो जाने पर अष्टमांश अवशिष्ट क्वाथ को छान ले और इसमें मजीथ, प्रियुंग तथा मोचरस (सेमर का गोंद) एक मुष्टि (1 पल = 50 ग्राम प्रत्येक) का चूर्ण ओर तीनों के बराबर इन्द्रजव का चूर्ण तीन पल (150 ग्राम) मिलाकर दर्वी लेप अवलेह तैयार कर ले। इस अवलेह को अग्नि–बल के अनुसार चाटकर पेया, मण्ड, बकरी के दूध या गाय के दूध के साथ भोजन करे। यह अवलेह, रक्तातिसार अर्श रोग तथा बलवान् रक्तपित्त को या ऊध्वर्ग तथा अधोग रक्तस्रावयुक्त रक्तपित्त को शान्त करता है।

अर्श रोग में द्वितीय कुटजावलेह–

कुटजत्वक्तुलां द्रोणे पचेदष्टांशशेषिताम्।।
कल्कीकृत्य क्षिपेत्तत्र तार्क्ष्यशैलं कटुत्रयम्।
रोध्रद्वयं मोचरसं बलां दाडिमजां त्वचम्।।
बिल्वकर्कटिकां मुस्तं समागंधातकीफलम्।
पलोन्मितं दशपलं कुटजस्यैव च त्वचः।।
त्रिंशत्पलानि गुडतो घृतात्पूते च विंशातिः।
तत्पक्वं लेहतां यातं धान्ये पक्षस्थितं लिहन्।।
सर्वोर्शो ग्रहणीदोष–श्वासकासान्नियच्छति।

अर्थ : कुटज (कोरैया) का छाल एक तुला (5 किलो) लेकर तथा यवकूट क जल एक द्रोण (16 किलो) में पकाने (अष्टमांश शेष रह जाने) पर छान ले औ उसमें रसौत, कटु–त्रय (सोंठ, पीपर, मरिच), सावर लोध, पठानी लोध मोचरस, बला–बीज, अनार का छाल, बेगगिरि, काकड़ा–सिंघी, नागरमोथ मंजीठ तथा आँवला एक–एक पल (प्रत्येक 50 ग्राम) इन सबको पीसक कल्क तथा कुटज–छाल दश पल (500 ग्राम) का चूर्ण छोड़ दे और उसमें गु तीस पल (1 कि. 500 ग्राम) तथा घी बीस पल (1 किलो) मिलाकर पका और अवलेह तैयार होने पर उतार कर रख ले। इसके बाद अन्न की ढेर पन्द्रह दिन तक रखकर निकाल ले और अग्निबल के अनुसार (50 ग्राम व मात्रा में) चाटें। यह सभी प्रकार के अर्श रोग, ग्रहणीविकर, श्वास रोग तः कास रोग को दूर करता है।

अर्श में रोध्रादि विविध–योग–

रोध्रं तिलान्मोचरसं समग्रं चन्दनोत्पलम्।।
पाययित्वाऽजदुग्धने शालींस्तेनैव भोजयेत्।
यष्टयाह्वपद्मकानन्तापयस्याक्षीरमोरटम्।।
ससितामधु पातव्यं शीततोयेन तेन वा।
रोध्रकट्ङ्गकुटजसमगशाल्मलीत्वचम्।।
हिमकेसरयष्टयाह्व–सेव्य वा तण्डुलाम्बुना।

अर्थ : लोध, तिल, मोचरस, मजीठ, चन्दन तथा नीलकमल समभाग इ सबका चूर्ण बकरी के दूध के साथ मिलाकर इसी के साथ भोजन करावे अथवा–मुलेठी, पद्माख, सारिवा, क्षीरविदारी तथा मधुस्रवा, समभाग इ सबका चूर्ण, मिश्री तथा मधु मिलाकर शीतल जल के साथ या बकरी दूध के साथ पान करे। अथवा लोध, सोना पाठा, कोरैया, मजीठ, सेमर व छाल, चन्दन, नागकेशर, मुलेठी तथा खस सम भग इन सबका चूर्ण चाव के धोअन के साथ पान करे।

अर्श रोग में यवान्यादि चूर्ण–

यवानीन्द्रयवाः पाठा बिल्वं शुण्ठी रसाज्जनम्।।
चूर्णश्, चले, हितः शूले प्रवृत्ते चाऽति शोणिते।

अर्थ : अर्श रोग में वातजन्य शूल के तथा रक्त के अधिक निकलने अजवायनख, इन्द्रजव, पाठा, बेल की गिरि, सोंठ तथा रसाज्जन समभाग इ सबका चूर्ण जल के साथ सेवन करावे।

रक्तार्श में सिद्ध घृत–

दृग्धिकाकण्टकारीभ्यां सिद्धं सर्पिः प्रशस्यते।।

अथवा धातकीरोध्रकुटजत्वक्फलोत्पलैः।
सकेसरैर्यवक्षारदाडिमस्वरसेन वा।।
शर्कराऽम्भोजकिञ्जल्कसहितं सह वा तिलैः।
अभ्यस्तं रक्तगुदजान् नवनीतं नियच्छति।।

अर्थ : रक्तार्श में दूधिया तथा कटेरी से सिद्ध घृत उत्तम लाभ करता है। अथवा धाय का फूल कन्द तथा कोरैया की छाल, इन्द्रजव, नीलकमल, नागकेशर, यवक्षार तथा अनार के रस के साथ विधिवत् सिद्ध घृत रक्तार्श में प्रशस्त है। अथवा शक्कर तथा कमल के केशर सहित तिल के साथ नवनीत (मक्खन) खाने से रक्तार्श को नष्ट करता है।

रक्तार्श में पथ्यौषध–

छागानि नवनीताज्यक्षीरमांसानि जागंलः।
अनम्लो वा कदम्लो वा सवास्तुकरसो रसः।।
रक्तशालिः सरो दध्नः शष्टिकस्तरूणी सुरा।
तरूणश्च सुरामण्डः शोणितस्यौषधं परम्।।

अर्थ : बकरी के दूध का मक्खन, घी तथा दूध, अथवा बथुआ के रस के साथ अम्ल सहित या थोड़ा अम्ल लाल जड़हन धान के चावल का भात, दही की मलाई, साठी चावल, तरूणीसुरा (मधुर सुरा), तरूण सुरामण्ड, ये सब रक्तार्श की उत्तम औषध हैं।

पेयायूषरसाद्येषु पलाण्डुः केवलोऽपि वा।
स जयत्युल्वणं रक्तं मारूतं च प्रयोजितः।।

अर्थ : अथवा पेया, यूष तथा प्याज़ मिलाकर सेवन करने से या केवल प्याज सेवन करने से वातजन्य प्रवृद्ध रक्तार्श को शान्त करता है।

अत्याधिक रक्तस्राव में वात का प्रकोप–

वातोल्वणानि प्रायेण भवन्त्यस्रेऽतिनिःसृते।
अर्शांसि, तस्मादधिकं तज्जये यत्नमाचरेत्।।

अर्थ : पायः अधिक रक्तस्राव होने पर वात–प्रधाान अर्श होते हैं। अतः इसकी शान्ति के लिए अधिक उपाय करना चाहिए।

अर्श मं अधिक रक्त निकलने पर चिकित्सा–

दृष्ट्वाऽस्रपित्तं प्रबलमबलौ च कफानिलौ।
शीतोपचारः कर्तव्यः सर्वथा तत्प्रशान्तये।।
यदा चैवं भामो न स्यात् स्निग्धोष्णैस्तर्पयेत्ततः।
रसैः कोष्णैश्च सर्पिर्भिरवपीडकयोजितैः।।
सेचयेत्तं कवोष्णश्च कामं तैलपयोघृतैः।

अर्थ : कफ तथा वात के दुर्बल होने पर पित्त की प्रबलता से अधिक रक्तस्राव देखकर उसकी शान्ति के लिए पूर्णरूप से शीतोपचार करे। यदि शीतोपचार से रक्तस्राव शान्त न हो तो स्निग्ध और थोड़ा उष्ण अवपीड़क से (गानुत्पारदकीय अ. ह. अ. 4–6) थोड़ा उष्ण घृत से तर्पण करे। इसके बाद थोड़ा गरम तैल, दूध या घृत से अर्श को अच्छी तरह सीचें।

रक्तार्श में पिच्छावस्ति–

यवासकुशकाशानां मूलं पुष्पं च शाल्मलेः।।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ–शुगश्च द्विपलोन्मिताः।
त्रिप्रस्थे सलिलस्यैतत्क्षीरप्रसथे च साधयेत्।।
क्षीरशेषे कषाये च तसिमन्पूते विमिश्रयेत्।
कल्कीकृतं मोचरसं समग्र चन्दनोत्पलम्।।
प्रियङ्गु कोटज बीजं कमलस्य च केसरम्।
पिच्छावस्तिरयं सिद्धः सघृतक्षौद्रशर्करः।।
प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्रावज्वरापहः।

अर्थ : यवास, कुश तथा कास इन सबकी जड़ख सेमर का फूल, वट, गूलर तथा पीपर का टूसा, दो–दो पल (प्रत्येक 100 ग्राम) इन सबको जल तीन प्रस्थ, (3 किलो) तथा दूध एक प्रस्थ (1 किलो) में मिलाकर पकावे केवल दूध शेष रह जाने पर छान ले तथा कषाय में मोचरस, मजीठ, चन्दन, नीलकमल, प्रियंगु, इन्द्रयव, तथा कमल का केसर समभाग इन सबका कल्क बनाकर मिला दे। इसके बाद इसमें घी, मधु तथा शक्कर मिला दे। यह पिच्छावस्ति है। इसका प्रयोग करने से यह प्रवाहिका, गुदभ्रंश, रक्तस्राव तथा ज्वर को नष्ट करता है।

रक्तार्श में अनुवासनवस्ति–

यष्टयाह्वपुण्डरीकेण तथा मोचरसादिभिः।
क्षीरद्विगुणितः पक्वो देयः स्नेहोऽनुवासनम्।।

अर्थ : मुलेठी, पुण्डरीक (लाल कमल) तथा पूर्वोक्त मोचरस आदि (मोचरस–मजीठ, चन्दन, नील कमल, प्रियंगु, इन्द्रयव तथा कमल–केशर) सम भाग इन सबों के कल्क के साथ तैल से दुगुना दूध मिलाकर स्नेह तैल सिद्ध करें और रक्तार्श में इसका अनुवासन दें।

त्रिदोषजार्श में मधुकादि घृत–

मधुकोत्पलरोध्राम्बुसमग्रं बिल्वचन्दनम्।।
चविकातिविषा मुस्तं पाठा क्षारो यवाग्रजः।
दार्वीत्वङ्नागरं मांसी चित्रको देवदारू च।।

चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिः साधितं तंस्त्रिदोशजित्।
अर्शोऽतिसारग्रहणीपाण्डुरोगज्वरारूचौ।।
मूत्रकृच्छ्रे गुदभ्रंशे वस्त्यानाहे प्रवाहणे।
पिच्छास्रावेऽर्शसां भूले देयं तत्परमौषधम्।।

अर्थ : मुलेठी, नील कमल, लोध, सुगन्धबाला, मजीठ, बेलगिरि, चन्दन, चव्य, अतीस, नागरमोथा, पाठा, यवक्षार, दारू हल्दी की छाल, सोंठ, जटामांसी, चित्रक तथा देवदारू समभाग इन सबों के कल्क के साथ चागेरी (चौपतिया) के स्वरस में घृत निर्माण विधि के अनुसार घृत (घृत के चौथाई कल्क तथा चौगुना स्वरस) सिद्ध करें। यह त्रिदोष–नाशक है। यह अर्श रोग, अतिसार, ग्रहणी, पाण्डुरोग, अरूचि, मूत्रकृच्छ, गुदभ्रंश, वस्तिरोग आनाह, प्रवाहिका, पिच्छास्राव तथा अर्शजन्य शूल में प्रयोग करें। यह अर्श के लिए उत्तम औषध है।

अर्श रोग में मधुराम्लादि का अदल–बल कर प्रयोग–

व्यत्यासान्मधुराम्लानि शीतोष्णानि च योजयेत्।
नित्यमग्निबलापेक्षी जयत्यर्शः कृतान् गदान्।।

अर्थ : अग्निबल के अनुसार अर्श रोग में मधुर तथा अम्ल पदार्थ और शीत तथा उष्ण पदार्थ का प्रयोग अदल–बदल कर करें। अर्थात् मधूर पदार्थ के बाद अम्ल पदार्थ तथा अम्ल पदार्थ के बाद मधुर पदार्थ और शीत पदार्थ के बाद उष्ण पदार्थ तथा उष्ण पदार्थ के बाद शीत पदार्थ का सेवन करें। यह प्रयोग अर्शजन्य रोगों को दूर करता है।

अर्श रोग में उदावर्त की चिकित्सा–

उदावर्तार्तमभ्यज्य तैलेः शीतज्वरापहैः।
सुस्निग्धैः स्वेदयेत्पिण्डैर्वर्तिमस्मै गुदे ततः।।
अभ्यक्तां तत्कराङ्गुष्ठसन्निभामनुलोमनीम्।
दद्याच्छयामात्रिवृद्दन्तीपिप्पलीनीलिनीफलैः।।
विचूर्णितैर्द्विलवणैर्गुडगोमूत्रसंयुतैः।
तद्वन्मागधिकाराठगृहधमैः ससर्षपैः।।
एतेषामेव वा चूर्णं गुदे नाडया विनिर्धमेत्।

अर्थ : अर्शरोग में उदावर्त से पीड़ित रोगी को शीतज्वर नाशक (तगर कुंकुमादि) उष्ण तैल से अभ्यज्जन कर अति स्निग्ध पिण्डों से स्वेदन करे। स्वेदन के बाद गुदा में उसके हाथ के अंगूठे प्रमाण की अनुलोमन करने वाली वर्ति को अभ्यज्जन कर प्रवेश करें। यह वर्ति काला निशोथ, दन्ती, पीपर, नीलिनी तथा मदनुफल इन सबों के चूर्ण में सेन्धानमक, सौवर्चल नमक, गुड़

तथा गोमूत्र मिलाकर बनावें। इसी प्रकार पीपर, मैनफल, गृहधूम तथा सरस को पीस कर उस रोगी के अंगुष्ठ प्रमाण वर्ति बनाकर तथा घृत–तैलादि र अभ्यज्जन कर गुदा में वर्ति का प्रयोग करें। अथवा इन्हीं सबों के चूर्ण क नाड़ी द्वारा फूंक कर गुदा में प्रवेश करें।

तद्विघाते सुतीक्ष्णं तु वस्ति स्निग्धं प्रपीडयेत्।।
ऋजूकुर्याद्गुदसिरा–विण्मूत्रमरूतोऽस्य सः।
भूयोऽनुबन्धे वातघ्नैर्विरेच्यः स्नेहरेचनैः।।
अनुवास्यश्च रौक्ष्याद्धि सग्रों मारूतवर्चसोः।

अर्थ : इन वर्ति तथा चूर्ण के निष्फल होने पर अतितीक्ष्ण स्निग्ध वस्ति क प्रयोग करें। यह स्नेह वस्ति रोगी की गुदा की सिरावों, मल–मूत्र तथा वा को मुलायम कर देती है। पुनः मल–मूत्रादि का रूकावट होने पर वातनाशव स्नेह विरेचन (एरण्ड तैल आदि) तथा अनुवासन वस्ति का प्रयोग करें। क्योंवि मल तथा वायु का रूकावट रूक्षता के कारण होता है।

अर्श आदि रोग में कल्याण क्षार–
त्रिकटुत्रिपटुश्रेष्ठादन्त्यरूष्करचित्रकम्।।
जर्जरं स्नेहमूत्राक्तमन्तर्धूमं विपाचयेत्।
शरावसन्धौ मृल्लिप्ते क्षारः कल्याणकाह्वयः।।
स पीतः सर्पिषा युक्तो भ्ङाक्ते वा स्निग्धभोजिना।
उदावर्तविबन्धार्शोगुल्मपाण्डूदरक्रिमीन्।।
मूत्रसङ्गाश्मरीशोफहृद्रोगग्रहणीगदान्।
मेहप्लीहरूजानाहश्वासकासांश्च नाशयेत्।

अर्थ : त्रिपटु (सेन्धा, सौवर्चल तथा विट नमक) त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच) श्रेष्ठा (त्रिफला–हर्रे, बहेड़ा, आँवला) दन्ती मिलावें, तथा चित्रक को कूटकर तथा तैल एवं गो–मूत्र में मिलाकर शराब–सम्पुट में रक्खें और कपड़मिट्टी से लिप्त कर दें। इसके बाद सुखाकर अन्तर्धूम पाक करें। यह कल्याणक नामक क्षार है। यह कल्याणक क्षार घृत के साथ पीने या भोजन में प्रयोग करने से स्निग्ध–भोजी रोगी के उदावर्त, विबन्ध, अर्श, गुल्मरोग, पाण्डुरोग, उदररोग, क्रिमिरोग, मूत्र की रूकावट, अश्मरी रोग, शोथ, हृदयरोग, ग्रहणीरोग, प्रमेह, प्लीहारोग, आनाह, श्वास तथा कास को नष्ट करता है।

सर्वंच कुर्याद्यित्प्रोक्तमर्शसां गाढवर्चसाम्।

अर्थ : अर्श रोग में गाढ पुरीष वाले रोगियों के लिए कही गई सम्पूर्ण चिकित्सा को उदावर्त आदि रोग में करे।।

अर्श—आदि रोग वरज्जारि भुक—

द्रोणेऽपां पूतिवल्क—
द्वितुलमथ पचेत्पादशेशे च तस्मिन्।
देयाऽशीतिर्गुडस्य
प्रतनुकरजसो व्योषतोऽष्टौ पलानि।
एतन्मासेन जातं
जनयति परमामूष्मणः पक्तिशक्ति
शुक्तं कृत्वाऽनुलोम्यं
प्रजयति गुदजप्लीहगुल्मोदराणि।।

अर्थ : पूतिकरंज्ज की ताजी छाल दो तुला (10 किलो) लेकर यव कूट कर ले और जल एक द्रोण (1 किलो) में पकावे चौथाई शेष रह जाने पर छान ले और उसमें गुड़ अस्सी पल (4 किलो) तथा व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) का महीन चर्णू आठ पल (400 ग्राम) मिलाकर तथा उसका मुख बन्द कर एक माह रक्खें। इसके बाद निकाल कर छान ले। यह करंज्जादि शुक्त जाठराग्नि को पाचनशक्ति उत्पन्न करता हे और वायु आदि को अनुलोमन कर अर्श रोग, प्लीहा रोग, गुल्म रोग तथा उदर रोग को दूर करता है।

अर्श आदि रोग में करज्जादि चुक्र—

पचेत्तुलां पूतिकरज्जवल्काद्।
द्वे मूलतश्चित्रककण्टकार्योः।
द्रोणत्रयेऽपां चरणावशेषे
पूते शतं तत्र गुडस्य दद्यात्।।
पलिकं च सुचूर्णितं त्रिजात—
त्रिकटुग्रन्थिकदाडिमाश्मभेदम्।
पुरपुष्करमूलधान्यचव्यं
हपुषामार्द्रकमम्लवेतसं च।।
शीतीभूतं क्षौद्रविंशत्युपेत—
मार्द्रद्राक्षाबीजपूरार्धकैश्च।
युक्तं कामं गण्डिकाभिस्तथेक्षोः
सर्पिः पात्रे मासमात्रेण जातम्।।
चुक्रं क्रकचमिवेदं दुर्नाम्नां वह्निदीपनं परमम्।
पाण्डुगरोदरगुल्मप्लीहानाहाश्मकृच्छ्घ्नम्।।

अर्थ : पूतिकरंज्ज की छाल एक तुला (5 किलो), चित्रक मूल एक तुला (5 किलो), कण्टकारी की जड़ एक तुला (5 किलो) इन सब को यव कूट कर जल तीन द्रोण (48 किलो) में पकावे। चौथाई शेष रहने पर छान ले और ठंड़ा

होने पर उसमें गुड़ सौ पल (5 किलो), मिला दे और उसमें त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपात), त्रिकटु (सोठ, पीपर, मरिच), चित्रक, अनार, पाषाणभेद, पुष्करमूल, धनिया, चूल्य, हाऊबेर, अदरक तथा अम्ल्वेत इन सबका चूर्ण एक–एक पल(प्रत्येक 50 ग्राम), शहद बीस पल (1 किलो) हर्रे, द्राक्षा, विनौरा, निम्बू, अदरक तथा गन्ने की गड़ेरियों को अपनी इच्छा के अनुसार मिला दे और घृस्निग्ध पात्र में एक मास तक रक्खे। इससे चुक्र तैयार हो जाता है। यह चुक्र अर्श रोग को आरी की तरह काटता है तथा जाठराग्नि को अच्छी तरह प्रदीप्त करता है और पाण्डुरोग, विषदोष, उदर रोग, गुल्म रोग, प्लीहा रोग, आनाह, पथरी तथा मूत्रकृच्छ को नष्ट करता है।

अर्श में रोग पिल्वादि शुक्त–

द्रोणं पीलुरसस्य वस्त्रगलितं न्यस्तं हविर्भजिने।।
युज्जीत द्विपलैर्मदामधुफलाखर्जूरधात्रीफलैः।
पाठामाद्रिदुरालभाम्लविदुलव्योषत्वगेलोल्लकैः
स्पृक्काकोललवङ्वेल्लचपलामूलाग्निकैः पालिकैः।
गुडपलशतयोजितं निवापते,
निहितमिदं प्रपिबंश्च पक्षमात्रात्।
निशयमयति गुदाङ्कुरान्, सगुल्मा–
ननलबलं प्रबलं करोति चाशु।।

अर्थ : पीलु फल का रस एक द्रोण (16 किलो), लेकर वस्त्र से छान ले और घृत–स्निग्ध पात्र में रक्खे। इसके बाद उसमें मदा (धाय का फूल), मधुक–फल (द्राक्षा), खजूर का फल, तथा आँवला दो–दो पल (प्रत्येक 100 ग्राम) पाठा, मदि (रेणुकाबीज), यवासा, अम्लवेंत, विदुल (वेतस), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), दालचीनी, इलायची, उल्वक (कुटकी) स्पृका (असवर्ग), बनबेर, लवंग, वेल्ला (वायबिडंग), पिपरामूल तथा चित्रक–राहु एक पल (50 ग्राम प्रत्येक) का यवकुट चूर्ण, गुड़ एक सौ पल (5 कि.) इन सबको मिला दें और पन्द्रह दिन तक मुख बन्द कर निर्वात स्थान में रक्खे। इसके बाद निकाल कर तथा छानकर अग्निबल के अनुसार पान करे। यह पिलवादि चुक्र अर्श रोग तथा गुल्म रोग को शान्त करता है और जाठराग्नि को शीघ्र ही प्रबल बनाता है।

अर्श–आदि रोग में दशमूल गुड–

एकैकशो दशपले दशमूलकुम्भ–
पाठाद्वयार्क–घुणवल्लभ–कट्फलानाम्।
दग्धे शृतेघ्नु कलशेन जलेन पक्वे
पादस्थिते गुडतुलां पलपच्चकं च।।

दद्यात्प्रत्येकं व्योषचव्याभयानां वह्नेर्मुष्टी द्वे द्वे यवक्षारतश्च।
दर्वीमालिम्पन् हन्ति लीढो गुडोऽयं
गुल्मप्लीहार्शः कुष्ठमेहाग्निसादान्।।

अर्थ : दशमूल (वेल, अरणी, गम्भारी, सोना पाठा, पाढल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सरिलन पिठवन, गोखरू) कुम्भ (दन्ती) पाठा, हर्रे, मदार, अतीस तथा जायफल, इन सबको दश–दश पल (प्रत्येक 500 ग्राम) लेकर आग में जलादें और जल एकद्रोण (12 किलो) में घोलकर कपड़ा से छान ले और पकावे। जब चौथाई शेष रह जाय तो गुड़ एक तुला (5 किलो) व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) चव्य तथा हर्रे पाँच–पाँच पल (प्रत्येक 50 ग्राम), चित्रक तथा यवक्षार दो–दो मुष्टी (प्रत्येक 50 ग्राम) इन सबको मिलाकर दर्वीलेप पाक तैयार करे। यह दशमूलादि गुड़ चाटने से गुल्मरोग, प्लीहारोग, अर्शरोग, कुष्ठरोग, प्रमेह तथा मन्दाग्नि को नष्ट करता है।

अर्श आदि रोग में चित्रकावलेह–

तोयद्रोणे चित्रकमूलतुलार्धं
साध्यं यावत्पादजलस्थमपीदम्।
अष्टौ दत्त्वा जीर्णगुडस्य पलानि
क्वाथ्यं भ्रूयः सान्द्रतया सममेतत्।।
त्रिकटुकमिसिपथ्याकुष्ठमुस्तावराङ्ग।
क्रिमिरिपुदहनैलाचूर्णकीर्णोऽवलेहः।
जयति गुदजकुष्ठप्लीहगुल्मोदराणि
प्रबलयति हुताशं शश्वदभ्यस्यमानः।।

अर्थ : चित्रकमूल आधा तुला (2 किलो 500 ग्राम), लेकर यवकुट करे और जल एक द्रोण (16 किलो) में पकावे चौथाई शेष रह जाने पर, उतार कर छान ले और उसमें गुड़ पुराना आठ पल (400 ग्राम) मिलाकर पकावे। जब वह लेहवत् तैयार हो जाय तब उसमें त्रिकटु (सोठ, पीपर, मरिच) सौंफ, हर्रे, कूट, नागरमोथा, दालचीनी बायविंडग, चित्रक तथा इलायची समभाग इन सबका चूर्ण मिलाकर अवलेह तैयार कर ले। यह अवलेह निरन्तर सेवन करने से अर्श रोग, कुष्ठ रोग, प्लीहा वृद्धि तथा गुल्म रोग को दूर करता है और जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

अर्श रोगों में त्रिकुटाद्य गुटिका–

गुडव्योषवरावेल्लतिलारूष्करचित्रकैः।
अर्शांसि हन्ति गुटिका त्वग्विकारं च शीलिता।।

अर्थ : गुड़, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), वरा (हर्रे, बहेड़ा आँवला), वायविडंग, तिल, शुद्ध भिलावा) चित्रक समभाग इन सबका चूर्ण बनाकर गुटिका बना ले। यह सेवन करने से अर्श रोग तथा रक्त–विकार को नष्ट करती है।

अर्श रोग में सूरण का प्रयोग–

मृल्लिप्तं सौरणं कन्दं पक्त्वाऽग्नौ पुटपाकवत्।
अद्यात्सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये।।

अर्थ : सूरण कन्द के ऊपर मिट्टी का लेप लगाकर अग्नि में पुटपाक की तरह पकाकर तथा मसलकर उसमें तैल तथा सेन्धा नमक मिलाकर अर्श रोग को दूर करने के लिए भक्षण करे।

अर्श रोग में मरिचादि गुटिका–

मरिचपिपपलिनागर चित्रकान्।
शिखिचतुर्गुणसूरणयोजितान्।।
कुरू गुडेन गुडान् गुदजच्छिदः।।

अर्थ : मरिच, पीपर, सोंठ तथा चित्रक क्रमशः इन सब को एक–एक भाग बढ़ाकर ग्रहण करे और उसका चूर्ण बनाकर तथा चित्रक के चौगुना सूरण का चूर्ण तथा गुड़ मिलाकर गुटिका बनावे। यह गुटिका अर्श रोग को नाश करता है।

अर्श रोग में सूरण मोदक–

चूर्णीकृताः शोडश सूरणस्य
भागास्ततोऽर्धेन च चित्रकस्य।
महौषधाद् द्वौ मरिचस्य चैको।
गुडेन दुर्नामजयाय पिण्डी।।

अर्थ : छिलका–रहित सूरण का चूर्ण सोलह भाग, चित्रक का चूर्ण आठ भाग, सोंठ का चूर्ण दो भाग तथा मरिच का चूर्ण एक भाग इन सबों को लेकर गुड़ के साथ अर्श रोग को दूर करने के लिए पिण्डी (गुटिका) बनावे।

अर्श रोग में वडवानल चूर्ण–

पथ्यानागरकृष्णाकरज्जवेल्लाग्निभिः सितातुल्यै।
वडवामुख इव जरयति बहुगुर्वपि भोजनं चूर्णम्।।

अर्थ : हर्र, सोंठ, पीपर, करंज्ज, वायविडंग तथा चित्रक समभाग इन सबों का चूर्ण बना ले और चूर्ण के बराबर शक्कर मिलाले। यह बडवानल चूर्ण है। यह चूर्ण अधिक तथा भारी भोजन को भी वड़बानल की तरह पचा देता है।

अर्श रोग में कलिगरि चूर्ण–

कलिगलागलीकृष्णावह्नयपामार्गतण्डुलैः।
भूनिम्बसैन्धवगुडैर्गुडा गुदजनाशनाः।।

अर्थ : इन्दू जव, कलिहारी, पीपर, चित्रक, अपामार्ग का बीज, चिरायता,सेन्धा नमक इन सबों का चूर्ण बनाकर गुड़ के साथ बटक बनावे। यह अर्शरोग को नाश करता है।

अर्श रोग में लवणोत्तमादि चूर्ण–

लवणोत्तमवह्निकलिंगयवां–
श्चिरबिल्वमहापिचुमन्दयुतान्।
पिब सप्तदिनं मथितालुडितान्।।
यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरूहान्।।

अर्थ : अर्श रोग को नष्ट करने की इच्छा करने वाला व्यक्ति सेन्धानमक, चित्रक, इन्द्रजव, करंज्ज तथा वयकान समभाग इन सबका चूर्ण मट्ठा में मिलाकर सात दिन तक पान करे।

अर्श की संक्षिप्त चिकित्सा–

शुष्केशु भल्लातकमग्रयमुक्तं
भैषज्यमार्द्रेषु तु वत्सकत्वक्।
सर्वेषु सर्वर्तुषु कालशेय–
मर्शःसु बल्यं च मलापहं च।।

अर्थ : शुष्क अर्शों में शुद्ध भल्लातक का प्रयोग उत्तम है। आर्द्र अर्श में कैरिया की छाल का प्रयोग प्रशस्त है और सभी प्रकार के अर्श में तथा सभी ऋतुवों में मट्ठा का प्रयोग बलकारक तथा दोषनाशक है।

अर्श के चिकित्सा सूत्र–

भित्त्वा विबन्धाननुलोमनाय
यन्मारुतस्याऽग्निबलाय यच्च।
तदन्नपानौषधमर्शसेन–
सेव्यं विवर्ज्यं विपरीतमस्मात्।।

अर्थ : अर्श का रोगी मल को भेदन कर वायु को अनुलोमन करने वाले तथा जाठराग्नि के बल को बढ़ाने वाले जो अन्न, पान् तथा औषध हैं उनको सेवन करे और इसके विपरीत अन्न–पान तथा औषध का त्याग करे।

अर्श आदि रोग में अग्नि रक्तार्श का निर्देश–

अर्शोऽतिसारग्रहणीविकाराः।
सन्नेऽनले सन्ति न सन्ति दीप्ते।
रक्षेदतसतेषु विशेषतोऽग्निम्।।

अर्थ : अर्श अतिसार तथा ग्रहणी रोग के निदान आपस में एक दूसरे से मिले जुले होते हैं। ये सब रोग जाठराग्नि के मन्द होने पर होते हैं तथा जाठराग्नि प्रदीप्त होने पर नहीं होते हैं या होने पर भी नष्ट हो जाते हैं। अतः इन पूर्वोक्त रोगों में विशेष कर अग्नि की रक्षा करनी चाहिए।

द्वितीय अध्याय

अथातोऽतिसारचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति हे स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः।।

अर्थ : अर्श चिकित्सा व्याख्यान के बाद अतिसार चिकित्सा का व्याख्‍ करेंगे ऐसा आत्रेयादि महर्षियों ने कहा था।

अतिसार में चिकित्सा सूत्र–

अतीसारो हि भूयिष्ठं भवत्यामाशयान्वयः।
हत्वाऽग्निं वातजेऽप्यस्मात् प्राक्तस्मिंल्लंघनं हितम्।।

अर्थ : अतिसार रोग अधिकतर जाठराग्नि को मन्द कर आमाशय से सम्‍ ात होता है। अतः वातज–अतिसार में भी पहले लघंन कराना हितकर

अतिसार में वमन का निर्देश–

शूल, आनाह तथा लाला स्राव से पीड़ित अतिसार के रोगी को वमन कराना हितक

दोषाधिक्य अतिसार में पहले उपेक्षा–

दोषाः सन्निचिता ये च विदग्धाहारमूर्च्छिताः।।
अतिसाराय कल्पन्ते तेषूपेक्षैव भेषजम्।
भृशोत्क्लेशप्रवृत्तेषु स्वयमेव चलात्मसु।।

अर्थ : विदग्ध (पक्व–अपक्व) आहार से मिले हुए जो संचित दोष अति को उत्पन्न करते हैं। उन अत्यधिक उत्कलेश उत्पन्न कर प्रवृत होने वाले स्वयं गतिमान होने वाले दोषों में पहले उपेक्षा ही औषध है। अर्थात् दोषें अच्छी तरह निकलने देना ही औषध है।

विश्लेशण : उपेक्षा का तात्पर्य अतिसार में प्रवृत दोष या मल को रोकने चेष्टा नहीं करनी चाहिए। किन्तु औषधि दोषों या मलों को पाचन के पाचन की देनी चाहिए।

आमातिसार में संग्राही उपचार का निषेध–

प्रयोज्यं न तु सङ्ग्राहि पूर्वमामातिसारिणि।
अपि चाध्मानगुरुताशूलस्तैमित्यकारिणि।।
प्राणदा प्राणदा दोषे विबद्धे सम्प्रवर्तिनी।

अर्थ : आमातिसार के रोगी के लिए पहले संग्राही उपचार का प्रयोग न

किन्तु आध्मान, गुरूता, शूल तथा स्तिमिता कारक होने पर प्राण देने वाली हरीतकी का प्रयोग करे। यह विबद्ध दोषों को प्रवृत्त कराने वाली है।

मध्यदोषातिसार में भूतीकादि चार क्वाथ–

पिबेत्प्रक्वथितास्तोये मध्यदोषो विशोषयन्।।
भूतीकपिप्पलीशुण्ठीवचाधान्यहरीतकीः।
अथवा बिल्वधनिकामुस्तानागरबालकम्।।
बिडपाठावचापथ्याकृमिजिन्नागराणि वा।
शुण्ठीघनवचामाद्रीबिल्ववत्सक हिङ्गु वा।।

अर्थ : मध्यम दोष वाला अतिसार का रोगी लघंन द्वारा जलीयांश का शोषण करता हुआ निम्न औषधियों को जल में क्वाथ कर पान करें। 1–भूतीक (अजवायन), पीपर, सोंठ, वच, धनिया तथा हर्रे, समभाग का क्वाथ, 2–अथवा बेलगिरि, धनिया, नागरमोथा, सोंठ तथा नेत्रवाला समभाग का क्वाथ, 3–अथवा विडनमक, पाठा, वच, हर्रे, विडगं तथा सोंठ समभाग का क्वाथ, 4–अथवा सोंठ, नागरमोथा, वच, माद्री (रेणुका बीज), बेलगिरि इन्द्र जब तथा हींग, समभाग इन सबों का क्वाथ पान करे।

अल्प दोषातिसार में लघंन का निर्देश–

शस्यते त्वल्पदोषाणाम् उपवासोऽतिसारिणाम्।

अल्प दोष वाले अतिसार के रोगी के लिए लघंन ही उत्तम है।

अतिसार में पेय जल–

वचाप्रतिविषाभ्यां वा मुस्तापर्पटकेन वा।।
ह्रीबेरनागराभ्यां वा विपक्वं पाययेज्जलम्।

अर्थ : वच तथा अतीस समभाग इन सबों के साथ पकाया जल या नागरमोथा तथा पित्तपापड़ा के साथ पकाया हुआ जल अथवा हाऊबेर तथा सोंठ के साथ पकाया हुआ जल पाचन के लिए अतिसार के रोगी को पिलाये।।

अतिसार में भोजन–

युक्तेऽन्नकाले क्षुत्क्षामं लध्वन्नं प्रतिभोजयेत्।।
तथा स शीघ्रं प्राप्नोति रूचिमग्निबलं बलम्।

अर्थ : उपयुक्त भोजन के समय पर भूख से क्षीण अतिसार के रोगी को हल्का अन्न खिलाये। ऐसा करने से अतिसार का रोगी शीघ्र ही रूचि, अग्निबल तथा शारीरिक बल प्राप्त करता है।।

अतिसार रोग में सात्म्य पान–

तक्रेणावन्तिसोमेन यवाग्वा तर्पणेन वा।।
सुरया मधुना चाऽथ यथासात्म्यमुपाचरेत्।

अर्थ : अतिसार रोगी के लिये जो सात्म्य हो उसके अनुसार तक्र, कांज्जी या यवागू या तर्पण सत्तू या सुरा या मधु (मद्य) से उपचार करें। अर्थात् पेय के रूप में प्रयोग करें।

अतिसार में पाचनादि औषध सिद्ध भोजन—

भोज्यानि कल्पयेदूर्ध्वं ग्राहिदीपनपाचनैः।।
बालबिल्वशठीधान्यहिङ्गुवृक्षाम्लदाडिमैः।
पलाशहपुषाऽजाजीयवानीबिडसैन्धवैः।।
लघुना पच्चमूलेन पच्चकोलेन पाठया।

अर्थ : लघंनादि उपक्रम के बाद अतिसार के रोगी के लिए संग्राही, दीपन तथा पाचन औषधों के जल से भोजन (खाद्य पदार्थों) को सिद्ध करें। कच्चा बेलगिरि, कचूर, धनियाँ, हींग, वृक्षाम्ल (विषामिल), अनारदाना, पलाश, हाऊबेर, जीरा, अजवायन, विडनमक, सेन्धानमक, लघु पच्चमूल (सरिवन, पठिवन, कण्टकारी, बनभंटा तथा गोखरू), पच्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) तथा पाठा इन ग्राही, दीपन तथा पाचन द्रव्यों के पकाये जल से सिद्ध भोजन का प्रयोग करे।

अतिसार में दोषानुसार पेया—

शालिपर्णीबलाबिल्वैः पृश्निपर्ण्यचि साधिता।।
दाडिमाम्ला हिता पेया कफपित्ते समुल्बणे।
अभयापिप्पलीमूलबिल्वैर्वातानुलोमनी।।

अर्थ : अतिसार के रोगी के लिए कफ—पित्त के बढ़े रहने पर सरिवन, बरियार, बेलगिरि तथा पिठवन के पकाये जल से सिद्ध एवं अनारदाना से अम्ल की हुई पेया हितकर है और वात के बढ़े रहने पर हर्रे, पिपरा मूल तथा बेलगिरि इन सब के पकाये जल से सिद्ध वातानुलोमक पेया हितकर है।

बहुदोषातिसार में उपचार—

विबद्धं दोषबहुलो दीप्ताग्निर्योऽतिसार्यते।
कृष्णाविडगत्रिफलाकषायैस्तं विरेचयेत्।।
पेयां युज्ज्याद्विरिक्तस्य वातघ्नैर्दीपनैः कृताम्।

अर्थ : प्रदीप्त अग्नि बाला बहुत दोषों से युक्त जो अतिसार का रोगी रूक—रूक कर मल त्याग करता हो तो पीपर, वायविडंग तथा त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) समभाग इन सब के कषायों से विरेचन दे। विरेचन के बाद वातनाशक तथा दीपक औषधों के जल से सिद्ध पेया का प्रयोग करे।

पक्वातिसार में विविध चिकित्सा—

आमे परिणते यस्तु दीप्तेऽग्नावुपवेश्यते।।
सफेनपिच्छं सरूजं सविबन्धं पुनः पुनः।

अल्पाल्पमल्पं समलं निर्विड्वा सप्रवाहिकम्।।
दधितैलघृतक्षीरैः सशुण्ठीं सगुडां पिबेत्।
स्विन्नानि गुडतैलेन भक्षयेद्वदराणि वा।।
गाढविड्विहितैः शाकैर्बहुस्नेहैस्तथा रसैः।
क्षुधितं भोजयेदेनं दधिदाडिमसाधितैः।।
शाल्योदनं तिलैर्माषैर्मुद्गैर्वा साधु साधितम्।
शुण्ठया मूलकपोतायाः पाठायाः स्वस्तिकस्या वा।।
स्नुषायवानीकर्कारूक्षीरिणीचिर्भटस्य वा।
उपोदिकाया जीवन्त्या बाकुच्या वास्तुकस्य वा।।
सुवचलायाश्चुजेर्वा लोणिकाया रसैरपि।
कूर्मवर्तकलोपाकशिखितित्तिरिकौक्कुटैः।।

अर्थ : जो अतिसार का रोगी आम दोषों के पच जाने तथा अग्नि के प्रदीप्त रहने पर फेन तथा पिच्छा से युक्त रूक–रूक कर बार–बार, थोड़ा–थोड़ा, मल–सहित या विना मल का और प्रवाहिका के साथ मल का तयाग करता है वह दही तैल, घृत, तथा दूध के साथ गुड़ तथा सोंठ के चूर्ण को पान करे। अथवा उबाले हुए बेर के फलों को गुड़ तथा तैल के साथ भक्षण करे। अथवा बुभुक्षित अतिसार के रोगी को बाढ विटक अर्श के लिए कहे गये अधिक स्नेह युक्त शाक, स्नेह, तथा दही तथा आनार दाना के रस खिलाये। अथवा तिल, माष तथा मूंग के साथ अच्छी तरह सिद्ध किया हुआ जडहन धान का भात खिलाये। अथवा सोंठ कच्ची मूली, पाठा, स्वस्तिक, अथवा स्नुषा, अजवायन, ककड़ी, क्षीरी वृक्ष तथा चिरमिट (फूट) अथवा पोई, जीवन्ती, वाकुची, वथुआ अथवा सुश्चला (हुरहुर), चुंज्ज (चोंच) अथवा लोनी इन सब के शाक तथा साथ जड़हन धान का भात खायें।

पक्वातिसार में बिल्वादि यवागू–

बिल्वमुस्ताक्षिभैषज्यधातकीपुष्पनागरैः।
पक्वातिसारजित्तक्रे यवागूर्दाधिकी तथा।।
कपित्थकच्छुराफज्जीयूथिकावटशेलुजैः।
दाडिमोशणकार्पासीशाल्मलीमोचपल्लवैः।।

अर्थ : बेल, नागर मोथा, अक्षिभैषज्य (लोध) धाय का फूल तथा सोंठ समभाग इन सब के पकाये जल तथा मट्ठा में या दही में बनाई यवागू पक्वातिसारनाशक है। कैथ, केवाछ बीज, कांज्जी, चमेली, वरगद तथा लिसोड़ा के पत्तों समभाग इन सब के पकाये जल में या अनार सण, कपास तथा सेमल के पत्तों के पकाये जल तथा दही में सिद्ध यवागू पक्वातिसार को नष्ट करता है।

प्रवाहिका में बिल्वादिखल–

कल्को बिल्वशलाटूनां तिलकल्कश्च तत्समः।

दध्नः सरोऽम्लः सस्नेहः खलो हनित प्रवाहिकाम्।।

अर्थ : कच्चा बेल की गिरि के कल्क में समभाग तिलका कल्क तथा दही की खट्टी मलाई में थोड़ा घृत मिलाक बनाया खल (खड़) प्रवाहिका को नष्ट करता है

अपराजितमाह—

प्रवाहिका में अपराजितखड—

मरिचं धकिाजाजीतित्तिडीकशठी बिडम्।
दाडिमं धातकीपाठात्रिफलापच्चकोलकम्।।
यावशूकं कपित्थाम्रजम्बूमध्यं सदीप्यकम्।
पिष्टैः शङ्गुणबिल्वैस्तैर्दध्नि मुद्गरसे गुडे।।
स्नेहे च यमके सिद्धः खलोऽसूनीरकतमः।
दीपनः पाचनो ग्राही रूच्यो बिम्बिशि—नाशनः।।

अर्थ : मरिच, धनियां, जीरा, इमली, कचूर, विडनमक, अनारदाना, धाय क फूल, पाठा, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), पच्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य चित्रक, सोंठ), यवक्षार कैथ, आम तथा जामुन का गूदा और अजवाया समभाग इन सब के कल्क में बेलगिरि छः मात्रा का कल्क मिलाकर दही, मूँ के रस, गुड़, तैल तथा घृत में सिद्ध करें। यह अपराजित खंड है। य जाठराग्नि दीपक, पाचक, ग्राही, रूचिकारक तथा प्रवाहिका को नाश करता है

पक्वातिसार में विविध यूष—रस आदि—

कोलानां बालबिल्वानां कल्कैः शालियवस्य च।
मुद्गमाषतिलानां च धान्ययूषं प्रकल्पयेत्।।
ऐकध्यं यमके भृष्टं दधिदाडिमसारिकम्।
वर्चःक्षये शुष्कमुखं भाल्यन्नं तेन भोजयेत्।।
दध्नः सरं वा यमके भृष्टं सगुडनागरम्।
सुरां वा यमके भृष्टां व्यज्जनार्थं प्रयोजयेत्।।
फलाम्लं यमके सृष्टं यूषं गृज्जनकस्याा वा।
भृष्टान्वा यमके सक्तून् खादेद् व्योषवचूर्णितान्।।
माषान् सुसिद्धांस्तद्वद्वा घ्ज्ञृतमण्डोपसेवनान्।
रसं सुसिद्धं पूतं वा छागमेषान्तराधिजम्।।
पचेद्दाडिमसाराम्लं सधान्यस्नेहनागरम्।
रक्तशाल्योदनं तेन भुज्जानः प्रपिबंश्च तम्।।
वर्चःक्षयकृतैराशु विकारैः परिमुच्यते।

अर्थ : बेर तथा ब्राल बिल्व का गूदा, जड़हन धान का चावल, जब, मूंग, उड़ तथा तिल इन सबका कल्क बनाकर घी तथा तैल में भूनकर और दह अनारदाना मिलाकर धान्य यूष बनावे और मल के क्षय होने पर तथा मुख

सूखने पर उस धान्य यूष के साथ जड़हन धान का भात खिलाये। अथवा—दही की मलाई को घी तथा तैल में भूनकर और गुड़ एवं सोंठ का चूर्ण मिलाकर अथवा सुरा को घी तथा तैल में भूनकर मल क्षय में व्यंज्जन के लिए प्रयोग करें। अथवा अम्ल फलों के रस को या गाजर के यूस को घी तथा तैल में भूनकर या सतू को घी तथा तैल में भूनकर और व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) का चूर्ण मिलाकर खायें। अथवा इसी प्रकार उड़द को पकाकर घृत मण्ड के साथ खायें, तथा छान कर उसमें अनार दाना के अम्ल रस को धनियाँ का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण तथा घृत मिलाकर पकायें और इस लाल जंडहन धान के भात को खायें तथा इसके सेवन से मल क्षय से उत्पन्न विकारों से शीघ्र छुटकारा पा जाता है।

प्रवाहिका में बालबिल्वादि अवलेह—

बालबिल्वं गुडं तैलं पिप्पलीविश्वभेषजम्।।
लिहयाद्वाते प्रतिहते सशूलः सप्रवाहिकाः।

अर्थ : वायु के विगुण होने से शूल युक्त प्रवाहिकिा का रोगी कच्चा बेल की गिरि, पीपर, तथा सोंठ—समभाग इन सब के चूर्ण को गुड़ तथा तैल में मिलाकर चाटे।

प्रवाहिका में लोध्रादि योग—

वल्कलं शाबरं पुष्पं धातक्य बदरीफलम्।।
पिबेद्दधिसरक्षौद्रकपित्थस्वरसाप्लुतम्।

अर्थ : लोध की छाल, धाय का फूल तथा बेर का पत्ता इन सब का चूर्ण बनाकर तथा दही की मलाई, मधु तथा कैथ के फल का स्वरस मिलाकर पान करें।

सशूल प्रवाहिका में दूध का विविध प्रयोग—

विबद्धवातवर्चास्तु बहुशूलप्रवाहिकः।।
सरक्तपिच्छस्तृष्णार्तः क्षीरसौहित्यमर्हति।
यमकस्योपरि क्षीरं धारोष्णं वा प्रयोजयेत्।।
शृतमेरण्डमूलेन बालबिल्वेन वा पुनः।

अर्थ : वात तथा पुरीष का अवरोध वाला इस रक्त, पिच्छ तथा अधिक शूल युक्त प्रवाहिका एवं प्यास से पीडित रोगी दूध से तृप्त होता है। अथवा तैल तथा घी को पीकर उपर से धारोष्ण दूध का प्रयोग करे अथवा एरण्ड की जड़ से सिद्ध या कच्चे बेल की गिरि से सिद्ध दूध पान करें।

सवेदनामनाशक योग—

पयस्युत्क्वाथ्या मुस्तानां विंशतिस्त्रिगुणेऽम्मसि।।
क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्यादामं सवेदनम्।

अर्थ : नागर मोथा के बीस नग को दूध तथा दूध से तीन गुना जल में पकावे।

केवल दूध मात्र शेष रहने पर छानकर वेदना युक्त आम दोष की शान्ति के लिए पान करे। जीर्ण प्रवाहिका में पीपर तथा मरिच का चूर्ण–

पिप्पल्याः पिबतः सूक्ष्मं रजो मरिचजन्म वा।।
चिरकालानुषक्ताऽपि नश्यत्याशु प्रवाहिका।

अर्थ : पीपर का महीन चूर्ण या मरिच का महीन चूर्ण शहद के साथ खाने से बहुत पुराना भी प्रवाहिका रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

प्रवाहिका में घृत का प्रयोग–

निरामरूपं शूलार्तं लङ्घनाद्यैश्च कर्षितम्।।
रूक्षकोष्ठमपेक्ष्याग्निं सक्षारं पाययेद् घृतम्।

अर्थ : आम दोष के नष्ट हो जाने पर शूल से पीडित, लघंन, पाचन आदि से कृश तथा रूक्ष कोष्ठ वाले प्रवाहिका के रोगी को यवक्षार मिलाकर घृत पान कराये।

प्रवाहिका में सद्यः वेदना नाशक तैल–

सिद्धं दधिसुरामण्डे दशमूलस्य चाम्भसि।।
सिन्धूत्थपच्चकोलाभ्यां तैलं सद्योऽर्तिनाशनम्।

अर्थ : दही तथा सुरा और दशमूल के क्वाथ में सेन्धा नमक तथा पच्चकोल (पीपर, पिपरा मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) के कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध तैल पान करने से शीघ्र ही प्रवाहिको की वेदना को नाश करता है।

प्रवाहिका में शुण्ठ्यादि तैल–

शड्भिःशुण्ठयाःपलैद्वर्भ्यांद्वाभ्यांग्रन्थ्यग्निसैन्धवात्।
तैलप्रस्थं पचेद्दध्ना निःसारकरूजापहम्।

अर्थ : सोंठ छः पल (300 ग्राम), पिपरा मूल दो पल (100 ग्राम), चित्रक दो पल (100 ग्राम) तथा सेन्धा नमक दो–दो पल (100 ग्राम) इन सब के कल्क और तैल एक प्रस्थ (1 किलो) को दही के साथ विधिवत तैल सिद्ध करे। यह पीने से फोड़ा युक्त प्रवाहिका को नाश करता है।

प्रवाहिका में दुग्धादि की प्रशस्ति–

एकतो मांसदुग्धाज्यं पुरीषग्रहशूलजित्।।
पानानुवासनाभ्यगप्रयुक्तं तैलमेकतः।
तद्धि वातजितामग्र् यं शूलं च विगुणोऽनिलः।

अर्थ : एक तरफ दूध तथा घृत मल का अवरोध तथा शूल को नष्ट करता है और दूसरे तरफ पान, अनुवासन तथा अभ्यगं में प्रयुक्त केवल तैल पुरी

बन्ध तथा शूल का नाश करता है। यह वात शामक औषधों में श्रेष्ठ है। शूल वायु के विलोम होने से होता है।

प्रवाहिका में तैल की विशेषता–

धात्वन्तरोपमर्दाद्धि चलो व्यापी स्वधामगः।
तैलं मन्दानलस्याऽपि युक्त्या शर्मकरं परम्।
वारूवाशये सतैले हि बिम्बिशी (सी) नावतिष्ठते।।

अर्थ : वायु से भिन्न पित्त, कफ तथा रसादि धातुओं के क्षीण होने से बढ़ा हुआ वात सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होने पर भी अपने स्थान में स्थित होता है। इस अवस्था में मन्दाग्नि अतिसार के रोगी को विधिपूर्वक दिया हुआ तैल अधिक कल्याण कारक होता है। वायु के आमाशय में तैल के विद्यमान रहने पर प्रवाहिका रोग नहीं ठहरता है। अर्थात् नष्ट हो जाता है।।

तैल की महत्ता–

क्षीणे मले स्वायतनच्युतेषु
दोषान्तरेष्वीरण एकवीरे।
को निष्टनन् प्राणिति कोष्ठशूली
नान्तर्बहिस्तैलपरो यदि स्यात्।।

अर्थ : मल के क्षीण होने पर पित्त–कफ के अपने स्थान से च्युत हो जाने पर अकेले वायु के ही एक प्रबल रहने से कन्दन पूर्वक मल त्याग करता हुआ कोष्ठ शूल वाला कौन रोगी बच सकता है यदि अन्दर तथा बाहर विशेष रूप से तैल का प्रयोग न करता हो।

गुद भ्रंश की चिकित्सा–

गुदरुग्भ्रंशयोर्युज्ज्यात्सक्षीरं साधितं हविः।
रसे कोलाम्लचाङ्ेर्योर्दध्नि पिष्टे च नागरे।।

अर्थ : बेर तथा चांगेरी (चौपतिया) के रस, दही तथा दूध में सोंठ के कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध घृत गुदा के शूल तथा गुद भ्रंश में प्रयोग करे।

तैरेव चाम्लैः संयोज्य सिद्धं सुश्लक्ष्णकल्कितैः।
धान्योषणबिडाजाजीपच्चकोलकदाडिमैः।।

अर्थ : पूर्व के अम्लरस (बेर, चौपतिया आदि के रस) के साथ, धनिया, मरिच, विड्नमक, जीरा, पच्चकोल (पीपर, पिपरा मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) तथा अनार दाना के महीन कल्क मिलाकर विधिवत् सिद्ध घृत गुदशूल तथा गुदभ्रंश में लाभदायक है।

योजयेत्स्नेहबस्ति वा दशमूलेन साधितम्।
शठीशताह्वाकुष्ठैर्वा वचया चित्रकेण वा।।

अर्थ : अथवा दशमूल (सखिन, पिठवन, भट कटैया, वनभंटा, गोखरू, बेल, गम्भारी, सोनापाठा, अरणी, पाठल) के कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध स्नेह वस्ति का प्रयोग करे। अथवा कचूर, सौंफ तथा कुष्ठ के कल्क से सिद्ध स्नेह वस्ति का प्रयोग करे या वच तथा चित्रक के कल्क से विधिवत सिद्ध स्नेह वस्ति का गुद शूल तथा गुद भ्रंश में प्रयोग करे।

प्रवाहण गुद भ्रंशादि में अनुवासन तैल–घृत–

प्रवाहणे गुदभ्रंशे मूत्राघाते कटिग्रहे।
मधुराम्लैः शृतं तैलं घृतं वाऽप्यनुवासनम्।।

अर्थ : प्रवाहण, गुदभ्रंश, मूत्राघात तथा कटि ग्रह में मधुर तथा आम्ल वर्ग के द्रव्यों के कल्क से विधिवत् सिद्ध घृत तथा तैल का अनुवासन वस्ति दे।

गुदभ्रंश में गोफलाबन्ध–

प्रवेशयेत् गुदं ध्वस्तमभ्यक्तं स्वेदितं मृदु।
कुर्याच्च गोफणाबन्धं मध्यच्छिद्रेण चर्मणा।।

अर्थ : निकले गुदा को अभ्यगं तथा स्वेदन से मुलायम कर अन्दर प्रवेश करे और मध्ये में छिद्रवाले चमड़े की पट्टी से गोफला बन्द करें।

गुद भ्रंश में मूषिक तैल–

पच्चमूलस्य महतः क्वाथं क्षीरे विपाचयेत्।
उन्दुरूं चान्त्ररहितं तेन वातघ्नकल्कवत्।।
तैलं पचेद् गुदभ्रंशं पानाभ्यडेन तज्जयेत।

अर्थ : महापच्चमूल (बेल, गम्भारी,, अरणी, सोना पाठा, पाढ़ल) के क्वाथ के दूध में पकाये। उस दूध में अंतड़ी निकालकर मूसा को पकावे और उस दू ा में पुनः वात नाशक औषधों के कल्क के साथ विधिवत् तैल सिद्ध करे इसके बाद उस तैल को पिलाकर तथा अभ्यंग कर गुदभ्रंश को दूर करें।

पित्तातिसार की चिकित्सा–

पैत्ते तु सामे तीक्ष्णोष्णवर्ज्यं प्रागिव लघंघनम्।।
तृष्मान् पिबेत् शडगगाम्बु सभूनिम्बं ससारिवम्।
पेयादि क्षुधितस्यान्नमग्निसन्धुक्षणं हितम्।।
बृहत्यादिगणाभीरूद्विबलाशूर्पणर्णिभिः।

अर्थ : पैत्तिक अतिसार की सामावस्था में तीक्ष्ण तथा उष्ण द्रव्यों को छोड़क पूर्ववत लंघन करावे। प्यास लगने पर षडग (नागर मोथा, चन्दन, सोंठ

सुगन्धवाला, पित्त पापड़ा, तथा खस सम भाग इन सबों का पकाया जल) पानी चिरायता तथा सारिवा के पकाये हुए जल के साथ पीने को दें। भूख लगने पर पेयादि अन्न जाठराग्नि को प्रदीप्त करने में हितकर है। पेया को बृहत्यादिगण (सरिवन, पिठवन, भटकटैय्या, वनभंटा, गोखरू) शतावरि, बला, अतिबला, माषपर्णी तथा मुद्गपर्णी इन द्रव्यों के जल से सिद्ध कर प्रयोग करे।

लगघंनपेया—आदि से अशान्त पित्तातिसार की चिकित्सा—

पाययेदनुबन्धे तु सक्षौद्रं तण्डुलाम्भसा।।
वत्सकस्य फलं पिष्टं सवल्कं सघुणप्रियम्।
पाठावत्सकबीजत्वग्—दार्वीग्रन्थिकशुण्ठि वा।।
क्वाथं वाऽतिविशाबिल्ववत्सकोदीच्यमुस्तजम्।
अथवाऽतिविषामूर्वानिशेन्द्रयव—तार्क्ष्यजम्।।
समध्वतिविषाशुण्ठीमुस्तेन्द्रयवकट्फलम्।

अर्थ : लंघन—पेया आदि से पित्तातिसार के न शान्त होने पर इन्द्रयव, कूड़ा की छाल तथा अतीस को पीसकर तथा शहद मिलाकर चावल के धोअन के साथ पान कराये। अथवा पाठा, इन्द्रजव, कूड़े की छाल, दारू हल्दी, पिपरा—मूल तथा सोठ, समभाग इन सब को पीसकर तथा मधु मिलाकर चावल के धोअन के साथ पान कराये। अथवा अतीस, बेलगिरि, इन्द्र जब, सुगन्धवाला तथा नागरमोथा का क्वाथ या अतीस, मूर्वा, हल्दी, इन्द्रजब, तथा रसाज्जन का क्वाथ पान करे। या अतीस, सोंठ, नागरमोथा, इन्द्रजब तथा कायफल इन सब का चूर्ण मधु के साथ भक्षण करे।

पित्ततिसार में वत्सकबीजादियोग—

पलं वत्सकबीजस्य श्रपयित्वा रसं पिबेत्।।
यो रसाशी जयेच्छीघ्रं स पैत्तं पाठरामयम्।
मुस्ताकषायमेवं वा पिबेन्मधुसमायुतम्।।
सक्षौद्रं शाल्मलीवृन्तकषायं वा हिमाह्वयम्।

अर्थ : वत्सक बीज (इन्द्र जब) एक पल (50 ग्राम) के क्वाथ में मिलाकर जो पान करता है वह शीघ्र ही पित्त जन्य अतिसार को जीत लेता है। अथवा नागर मोथा का कषाय मधु मिलाकर पान करे। अथवा सेमर की टूसा का कषाय या शीत कषाय शहद मिलाकर पान करे।

पित्तातिसार में चिरायतादि चार चूर्ण—

किराततिक्तकं मुस्तं वत्सकं सरसाज्जनम्।।
कटङ्कटेरीं ह्रीबेरं बिल्वमध्यं दुरालमाम्।

तिलान् मोचरसं रोध्रं समग्रं कमलोत्पलम्।।
नागरं धातकीपुष्पं दाडिमस्य त्वगुत्पलम्।
अर्धश्लोकैः स्मृता योगाः सक्षौद्रास्तण्डुलाम्बुना।।

अर्थ : (1) चिरायता, नागरमोथा, इन्द्रजब तथा रसाज्जन, (2) दारूहल्दी, हाउबेर, बेलगिरि, तथा यवासा, (3) तिल, मोचरस, लोध, मजीठ, कमल तथा नीलकमल, (4) सोंठ, धाय का फूल, अनार का छाल तथा नीलकमल समभाग इन सब का आधि श्लोक से समाप्त होने वाले चारों योगो का चूर्ण मधु तथा चावल के धोअन के साथ पान करे।

पक्वातिसार की चिकित्सा–

निशेन्द्रयवरोध्रैला–क्वाथः पक्वातिसारनुत्।

अर्थ : हल्दी, इन्द्रयव, तथा लोध समभाग इन सब का क्वाथ पीने से पक्वातिसार को दूर करता है।

रोध्राम्बष्ठाप्रियगंग्वादिगणास्तद्वत् पृथक् पिबेत्।।
रोध्रादि, आम्बष्ठादि तया प्रियगंग्वादि गण का
क्वाथ पूर्वोक्त प्रकार से अलग–अलग पान करे।।
कट्वगंवल्कयष्टयाह्व–फलिनीदाडिमाड्कुरैः।।
पेयाविलेपीखलकान् कुर्यात्सदधिदाडिमान्।।
तद्वद्दधित्थबिल्वाम्रजम्बुमध्यैः प्रकल्पयेत्।

अर्थ : सोना पाठा की छाल, मुलेठी, फूलप्रियंगु, तथा अनार की टूसा के साथ दही तथा अनार दाना मिलाकर पेया, विलेपी या खल बनाकर पान करे उसी प्रकार कैथ, का गूदा, बेलगिरि, आम का गूदा तथा जामुन का गूदा इन सब के साथ पेया आदि बनाकर पित्तातिसार में प्रयोग करें।

पक्वातिसार की चिकित्सा–

अजापयः प्रयोक्तव्यं निरामे तेन चेच्छमः।।
दोषाधिक्यान्न जायेत बलिनं तं विरेचयेत्।

अर्थ : पक्वातिसार में बकरी का दूध प्रयोग करे। दोषाधिक्य होने के कारण यदि उससे शान्त न हो तो बलवान् रोगी को विरेचन दे।

मल तथा रक्त के क्रमिक अतिसार की चिकित्सा–

व्यत्यासेन शकृद्रक्तमुपवेश्येत योऽपि वा।।
पलाशफलनिर्यूहं युक्तं वा पयसा पिबेत्।
ततोऽनु कोष्णं पातव्यं क्षीरमेव यथाबलम्।।
प्रवाहिते तेन मले प्रशाम्यत्युदरामयः।

पलाशवत्प्रयोज्या वा त्रायमाणा विशोधनी।।

अर्थ : व्यत्यास क्रम से मल तथा रक्त के निकलने पर अथवा मल के बाद रक्त और रक्त के बाद मल निकलने पर पलास के फूल का क्वाथ केवल या दूध के साथ पान करें। इस के बाद अग्निबल के अनुसार केवल थोड़ा गरम दूध ही पान करे। इस से मल के निकल जाने पर अतिसार शान्त हो जाता है। अथवा पलास पुष्प की तरह मलशोधक त्रायमाणा का क्वाथ प्रयोग करे।

आमजातिसार के शूल में अनुवासन विधि–

संसर्ग्या क्रियमाणायां शूलं यद्यनुवर्तते।
सुतदोषस्य तं भीघ्रं यथावह्नयनुवासयेत्।।

अर्थ : दोषों के निकल जाने पर संसर्गी (पेया मण्ड आदि) चिकित्सा करने पर भी यदि शूल शान्त न हो तो अग्निबल के अनुसार अनुवासन बास्ति का प्रयोग करे।

अतिसार में अनुवासन घृत–

शतपुष्पावरीभ्यां च बिल्वेन मधुकेन च।
तैलपादं पयोयुक्तं पक्वमन्वासनं घृतम्।।

अर्थ : सौफ, शतावरि, बेल गिरि तथा मुलेठी समभाग इन सब के कल्क के साथ चौथाई तैल मिलाकर तथा दूध मिलाकर कर विधिवत् घृत सिद्ध करे। (घृत 1 किलो, तैल 250 ग्राम, कल्क 250 ग्राम, दूध 4 किलो) और इसका अनुवासन वस्ति दे।

अशान्तातिसार में पिच्छा वस्ति का प्रयोग–

अशान्तावित्यतीसारे पिच्छाबस्तिः परं हितः।

अर्थ : पूर्वोक्त संसर्गी क्रिया तथा अनुवासन वस्ति से भी अतिसार के शान्त न होने पर पिच्छा वस्ति का प्रयोग करे।

पिच्छा वस्ति–

परिवेष्टय कुशैरार्द्रैरार्द्रवृन्तानि शाल्मलेः।
कृष्णमृत्तिकयाऽऽलिप्य स्वेदयेद्गोमयाग्निना।
मृच्छोषे तानि सगंक्षुद्य तत्पिण्डं मुष्टिसम्मितम्।।
मर्दयेत्पयसः प्रस्थे पूतेनास्थापयेत्ततः।
नतयष्टयाहवकल्काज्यक्षौद्रतैलवताऽनु च।।
स्नातो भुञ्जीत पयसा जागंलेन रसेन वा।

अर्थ : गीले सेमर के पुष्प वृन्तों को आर्द्रकुशों से लपेट कर तथा काली मिट्टी का लेप लगाकर उपलों की आग से स्वेदन करे और मिट्टी के सूख जाने पर मिट्टी को निकाल कर उसमें से एक मुष्टि (1 पल, 50 ग्राम) को कूट कर जल एक प्रस्थ (1 किलो) में मर्दन करे और तगर तथा मुलेठी का कल्क घी,

मधु तथा तैल मिलाकर छान ले। इसके बाद अतिसार में आस्थापन (अनुवासन) वस्ति दे। तदनन्तर स्नान कर दूध के साथ भोजन करे।

पिच्छा वस्ति का गुण–

पित्तातिसारज्वरशोफगुल्म–
समीरणास्रग्रहणीविकारान्।
जयत्ययं शीघ्रमतिप्रवृत्ति।।
विरेचनास्थापनयोश्च बस्तिः।।

अर्थ : यह पिच्छा वस्ति पित्तातिसार, ज्वर, शोथ, गुल्मरोग, वातविकार, रक्त विकार ग्रहणी विकार, तथा विरेचन एवं आस्थापन के अति योग को शीघ्र ही दूर करती है।

सभी अतिसार में कुटजादि का प्रयोग–

फाणितं कुटजोत्थं च सर्वातीसारनाशनम्।
वत्सकादिसममायुक्तं साम्बष्ठादि समाक्षिकम्।।

अर्थ : कुटज की छाल के फाणित (गाढ़े क्वाथ) में वत्स– कादिगण तथा अम्बष्ठादि गण की ओषधियों का चूर्ण तथा शहद मिलाकर सेवन कराये। यह सभी प्रकार के अतिसार को नाश करता है।

अतिसार में पुट पाक योग–

निरूग्गिनरामं दीप्ताग्नेरपि सास्रं चिरोत्थितम्।
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरूपाचरेत्।।

अर्थ : प्रदीप्त अग्नि वाले रोगी के वेदना तथा आमरहित रक्तमिश्रित अनेक वर्ण वाले पुराने अतिसार को पुट पाक के द्वारा उपचार करे।

सोपद्रव रक्तातिसार में श्योनाक का पुटपाक–

त्वक्पिण्डाद्दीर्घवृन्तस्य श्रीपर्णीपत्रसंवृतात्।
मृल्लिप्तादग्निना स्विन्नाद्रसं निष्पीडितं हिमम्।।
अतीसारी पिबेद्युक्तं मधुना सितयाऽथवा।
एवं क्षीरद्रुत्वग्भिस्तत्प्ररोहैश्च कल्पयेत्।।

अर्थ : दीर्धवृन्त (श्योनाक) की छाल के कल्क को गम्भारी के पत्तों से लपेट कर तथा मिट्टी का लेप लगाकर और आग में स्वेदन (पुट पाक) कर मसलने से निकले हुए रस को ठण्ढाकर तथा मधु मिलाकर या मिश्री मिलाकर अतिसार का रोगी पान करे। इसी प्रकार क्षीरी वृक्षों (वरगद, पाकड़, पीपर, पारस, पीपर तथा गूलर) की छाल तथा उनके वरोहियों के कल्क को गम्भारी के पत्तों से लपेट कर तथा मिट्टी का लेप लगाकर आग में स्वेदन करे और रस निकाल ले तथा उसमें शहद या मिश्री मिलाकर अतिसार का रोगी पुराने

रक्त युक्त अनेक वर्ण वाले अतिसार रोग में प्रयोग करे।

कट्वगत्वग्घृतयुता स्वेदिता सलिलोष्मणा।
सक्षौद्रा हन्त्यतीसारं बलवन्तमपि द्रुतम्।।

अर्थ : सोना पाठा की छाल को गरम जल से स्वेदन कर (घड़े में पानी भर कर उसके ऊपर जाली रख दे और उसके ऊपर श्योनाक की छाल रख के ढक दे तथा नीचे से आग जलाकर स्वेदन करे।) कल्क बना ले और उसमें घी मिला दे। इसके बाद उसमें शहद मिलाकर पिलावे। यह बलवान् अतिसार को शीघ्र ही शान्त करता है।

रक्तातिसार का निदान तथा चिकित्सा–
पित्तातिसारी सेवेत पित्तलान्येव यः पुनः।
रक्तातिसारं कुरूते तस्य पित्तं सतृड्ज्वरम्।।
दारूणं गुदपाकं च तत्र च्छागं पयो हितम्।
पद्मोत्पलसमगंभिः श्रृतं मोचरसेन वा।।
सारिवायष्टिरोध्रैर्वा प्रसवैर्वा वटादिजैः।
सक्षौद्रशर्करं पाने भोजने गुदसेचने।।

अर्थ : जो पित्तातिसार का रोगी पित्तकारक वस्तुओं का ही सेवन करता है उसका पित्त प्यास तथा ज्वर से युक्त भयंकर गुद पाक तथा रक्तातिसार को उत्पन्न करता है। इस रक्तातिसार में बकरी का दूध हितकर होता है। बकरी के दूध को कमल, नीलकमल, मजीठ तथा सेमर गोद, या सारिवा, मुलेठी तथा लोध्र अथवा बरगद आदि क्षीरी वृक्षों के अंकुरों से विधिवत् सिद्ध कर तथा मधु एवं शक्कर मिलाकर पीने, भोजन तथा गुदा को सींचन के लिए प्रयोग करे।

तद्वद्रसादयोऽनम्लाः साज्याः पानान्नयोर्हिताः।
काश्मर्यफलयूषश्च किञ्चिदम्लः सशर्करः।।

अर्थ : पूर्ववत् (कमल, नील, कमल आदि) द्रव्यों से सिद्ध अम्लरहित यूष आदि घृत के साथ मिलाकर पीने तथा भोजन में हितकर है। इसी प्रकार गम्भारी के फल का यूष थोड़ा अम्ल अनार दाना का रस तथा शक्कर मिलाकर प्रयोग करे।

पयस्यर्धोदके छागे ह्रीबेरोत्पलनागरैः।
पेया रक्तातिसारघ्नी पृश्निपर्णीरसान्विता।।
प्राग्भक्तं नवनीतं वा लिह्यान्मधुसितायुतम्।

अर्थ : बकरी के दूध में आधा पानी मिलाकर हाउबेर, नीलकमल तथा सोंठ समभाग इन सब के कल्क के साथ सिद्ध पेया, पृश्निपर्णी (पिठवन) का क्वाथ

मिलाकर रक्तातिसार को नाश करने के लिए भोजन के पहले पान करे अथ
मधु तथा मिश्री मिलाकर भोजन के पहले नवनीत (मक्खन) चाटे।

अधिक रक्त स्राव में उपचार–

बलिन्यस्रेऽस्रमेवाजं मार्गं वा घृतमर्जितम्।।
क्षीरानुपानं क्षीराशी त्र्यहं क्षीरोद्भवं घृतम्।
कपिञ्जलरसाशी वा लिहन्नारोग्यमश्नुते।।
पीत्वा शतावरीकल्कं क्षीरेण क्षीरभोजनः।
रक्तातिसारं हन्त्याशु तया वा साधितं घृतम्।।

अर्थ : प्रबल रक्तातिसार में घी में भूनकर दूध के साथ पान करे और दूध भोजन करे। अथवा दूध से निकाला हुआ घृत कपिञ्जल तीन दिन तक चा से रोगी को आराम मिलता है। शतावरी के कल्क को दूध के साथ पान व दूध भोजन करने वाला रक्तातिसार का शीघ्र ही नाश करता है अथवा शता के कल्क से सिद्ध घृत को खाने वाला रक्तातिसार का नाश करता है।

त्रिदोषज अतिसार में लाक्षादि घृत–

लाक्षानागरवैदेहीकटुकादार्विवल्कलैः
सर्पिः सेन्द्रयवैः सिद्धं पेयामण्डावचारितम्।
अतीसारं जयेच्छीघ्रं त्रिदोषमपि दारुणम्।।

अर्थ : लाख, सोंठ, पीपर, कुटकी, दारू हल्दी की छाल, तथा इन्द्रजब सब के कल्क से विधिवत् सिद्ध घृत पेया तथा मण्ड मिलाकर सेवन करने यह भयंकर त्रिदोषज अतिसार को भी शीघ्र ही दूर करता है।

रक्तातिसार में कृष्ण मिट्टी आदिका प्रयोग–

कृष्णमृच्छगयष्ट्याह्वक्षौद्रासृक्तण्डुलोदकम्।।
जयत्यस्रं प्रियगगुश्च तण्डुलाम्बुमधुप्लुता।

अर्थ : काली मिट्टी, शंख, मुलेठी तथा मधु को लाल धान के चावल (स चावल) के जल में मिलाकर पान करे अथवा प्रियंगु के कल्क को चावल जल तथा मधु में मिलाकर पान करे। यह रक्तातिसार को दूर करता है
रक्तातिसार में तिल का प्रयोग–

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्करापाच्चभागिकः।।
आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति।

अर्थ : काले तिल का कल्क शक्कर पांच भाग मिलाकर बकरी के दूध साथ पीने से शीघ्र ही रक्त को बन्द करता है।

रक्तातिसार में चन्दन का प्रयोग–

पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्बुना।।
दाहतृष्णाप्रमेहेभ्यो रक्तस्रावाच्च मुच्यते।

अर्थ : चन्दन का चूर्ण शक्कर तथा मधु मिलाकर चावल के धोवन के साथ पीने से दाह, प्यास, मूर्च्छा तथा रक्त स्राव से मुक्त हो जाता है।

गुददाहादि में उपचार–

गुदस्य दाहं पाके वा सेकलेपा हिता हिमाः।।

अर्थ : गुदा के दाह या पाक में शीतल परिषेक तथा शीतल लेप हितकर होता है।

रक्तातिसार में पिच्छावस्ति–

अल्पाऽल्पं बहुशो रक्त सशूलमुपवेश्यते।
यदा विबद्धो वायुश्च कृच्छाच्चरति वा न वा।।
पिच्छाबस्ंति तदा तस्य पूर्वोक्तमुपकल्पयेत्।

अर्थ : जो व्यक्ति थोड़ा–थोड़ा रक्त अनेक बार शूल के साथ त्याग करता है और जब वायु रूककर कठिनता से गति करती हो या न करती हो तो उसके लिए पूर्वोक्त पिच्छा वस्ति का प्रयोग करे।

रक्तातिसार में शिंशपादि पिच्छावस्ति–

पल्लवान् जर्जरीकृत्य शिंशिपाकोविदारयोः।।
पचेद्यवांश्च स क्वाथो घृतक्षीरसमन्वितः।
पिच्छास्रुतौ गुदभ्रंशे प्रवाहणरूजासु च।।
पिच्छाबसितः प्रयोक्तव्यः क्षतक्षीणबलावहः।

अर्थ : शीशम तथा काच्चनार के पत्तों को अच्दी तरह कूटकर तथा यव मिलाकर विधिवत् पकावे और उस क्वाथ में घृत तथा दूध मिलाकर उसकी पिच्छावस्ति पिच्छास्राव, गुद भ्रंश तथा प्रवाहिका की पीड़ा में प्रयोग करे। यह रूक्ष तथा क्षीण रोगी को बल देने वाला है।

रक्तातिसार में अनुवासनवस्ति–

प्रपौण्डरीकसिद्धेन सर्पिषा चाऽनुवासनम्।।

प्रपौण्डरीक (पुण्डरिया काठ) के कल्क तथा क्वाथ से विधिवत् सिद्ध घृत से अनुवासन वस्ति दे।

रक्तातिसार में शतावरी घृत–

रक्तं विट्सहितं पूर्वं पश्चाद्वा योऽतिसार्यते।
शतावरीघृतं तस्य लेहार्थमुपकल्पयेत्।।
शर्कराधांशकं लीढं नवनीतं नवोद्धृतम्।
क्षौद्रपादं जयेच्छीघ्रं त विकारं हिताशिनः।।

अर्थ : जो अतिसार का रोगी मल त्याग के पहले या बाद में मल के सा रक्त त्याग करता है उसे चाटने के लिये शतावरी घृत का प्रयोग करे। नवी निकाला हुआ मक्खन में आधा भाग शक्कर तथा चौथाई मार्ग शहद मिलाक चाटे। यह हितकर भोजन करने वाले रोगी को मलत्याग के पूर्व या बाद मल सहित रक्त त्याग को शीघ्र ही दूर करता है।

रक्तातिसार में न्यग्रोधादि घृत–

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुगनापोथ्य वासयेत्।
अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनाम्भसा पचेत्।।
तदर्धशर्करायुक्तं लेहयेत्क्षौद्रपादिकम्।
अधो वा यदि वाऽप्यूर्ध्व यस्य रक्तं प्रवर्तते।

अर्थ : वरगद, गूलर तथा अश्वत्थ के टूसों को अच्छी तरह कूटकर गरम ज में एक दिन–रात रक्खे और छानकर इस जल के साथ विधिवत् घृत पकावे इसके बाद उस घृत में आधा भाग शक्कर तथा चौथाई भाग शहद मिलाव जिस व्यक्ति के अधोमार्ग या ऊर्ध्व मार्ग से रक्त जाता हो उसको चटाये

कफातिसार की सामान्य चिकित्सा–

श्लेष्मातिसारे वातोक्तं विशेषादामपाचनम्।
कर्तव्यमनुबन्धेऽस्य पिबेत्पक्त्वाऽग्निदीपनम्।।
बिल्वकर्कटिकामुस्तप्राणदाविश्वभेषमजम्।
वचाविडगंभूतीकधानकाऽमरदारू वा।।
अथवा पिप्पलीमूल–पिप्पलीद्वयचित्रकान्।

अर्थ : कफज–अतिसार में वातातिसारोक्त चिकित्सा करे। विशेष कर अ पाचन चिकित्सा करनी चाहिए। यदि इस चिकित्सा से कफतिसार अनुबन्ध बना रहे तो अग्निदीपक बिल्वकर्कटिक (बेलगिरि), नागरमोथा, हर्रे त सोंठ अथवा वच, विडंग, अजवायन, धनिया तथा देवदारू या पीपरामूल, पीप गजपीपर तथा चित्रक समभाग इन सब का विधिवत् क्वाथ बनाकर पी

कफातिसार में विविध योग–

पाठाऽग्निवत्सकग्रन्थि–तिक्ताशुण्ठीवचाऽभयाः।।
क्वथिता यदि वा पिष्टाः श्लेष्मातीसारभेषजम्।
सौवर्चलवचाव्योषहिङ्गुप्रतिविषाऽभयाः।।
पिबेच्छ्लेष्मतिसारार्तश्चूर्णिताः। कोष्णवारिणा।
मध्यं लीढ्वा कपित्थस्य सव्योषक्षौद्रशर्करम्।।
कट्फलं मधुयुक्तं वा मुच्यते जठरामयात्।

कणां मधुयुतां लीढ्वा तक्रं पीत्वा सचित्रकम्।
भुक्त्वा वा बालबिल्वानि व्यपोहत्युदरामयम्।
पाठा–मोचरसाऽम्भोज–धातकीबिल्वनागरम्।।
सुकृच्छमप्यतीसारं गुडतक्रेण नाशयेत्।

अर्थ : (1) पाठा, चित्रक, इन्द्र जव, पिपरामूल, कुटकी, सोंठ, वच तथा हर्रे समभाग इन सब का क्वाथ या चूर्ण श्लेष्मातिसार का औषध है। अर्थात् इन द्रव्यों का क्वाथ या चूर्ण कफातिसार का रोगी सेवन करे।
(2) सौवर्चल नमक, वच, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) हींग, अतीस तथा हर्रे समभाग इन सब का चूर्ण थोड़ा गरम जल से कफातिसार से पीड़ित व्यक्ति पान करे।
(3) कैथ की गूदा को व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) मिलाकर मधु तथा शक्कर के साथ चाटकर या जायफल का चूर्ण मधु के साथ चाटकर अतिसार का रोगी उदर रोग से मुक्त हो जाता है।
(4) पीपर के चूर्ण को मधु के साथ चाटकर तथा मट्ठा को चित्रक चूर्ण के साथ पीकर अथवा कच्चे बेल की गूदा को खाकर अतिसार का रोगी उदर रोग को दूर करता है।
(5) पाठा, मोचरस, नागरमोथा, धाय का फूल, बेलगिरि तथा सोंठ समभाग इन सब का चूर्ण गुड़ मिलाकर मट्ठा के साथ खाने से अति कठिन अतिसार को भी नाश करता है।

अतिसार में कपित्थाश्ष्टक चूर्ण–
यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः।।
मरिचाग्निजलाजाजोधान्यसौवर्चलैः समैः।
वृक्षाम्लधात की कृष्णा बिल्वदाडिमदीप्यकैः।।
त्रिगुणैः शड्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः।
चूर्णोऽतिसार ग्रहणीक्षयगुल्मोदरामयान्।।
कासश्वासाग्निसादार्शःपीनसारोचकाज्जयेत्।

अर्थ : अजवायन, पिपरामूल, चातुर्जात, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरकेशर, सोंठ, मरिच, चित्रक, नागरमोथा, जीरा, धनियां तथा सौवर्चलनमक समभाग, वृक्षाम्ल (वृक्षामिल) धाय की फूल, पीपर, बेलगिरि, अनारदाना तथा अजमोदा ये सब तीन गुना, शक्कर छः गुना तथा कैथ की गुदा आठ गुना इन सब का बनाया चूर्ण अतिसार, ग्रहणी, क्षय, गुल्म रोग, गले का रोग, कास, श्वास, मन्दाग्नि, अर्शरोग, पीनस रोग तथा अरूचि को दूर करता है। अजवायन आदि एक–एक भाग, वृक्षाम्ल आदि तीन–तीन भाग, शक्कर छः

भाग तथा कैथ की गूदा आठ भाग ग्रहण करना अभित है।

दाडिमाष्टकः।

अतिसार में दाडिमाष्टक–

कर्षोन्मिता तवक्षीरी चातुर्जातं द्विकार्षिकम्।।
यवानीधान्यकाजाजीग्रन्थिव्योषं पलांशकम्।
पलानि दाडिमादष्टौ सितायाश्चैकतः कृतः।।
गुणैः कपित्थाष्टकवच्चूर्णोऽयं दाडिमाष्टकः।
भोज्यो वातातिसारोक्तैर्यथावस्थं खलादिभिः।।

अर्थ : वंशलोचन एक कर्ष (10 ग्राम), चातुर्जात (दाल–चीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर) दो कर्ष (20 ग्राम), अजवायन, धनिया, जीरा, पिपरामूल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) एक–एक पल (50 ग्राम), अनारदाना आठ पल (400 ग्राम) तथा शक्कर आठ पल (400 ग्राम) इन सब का चूर्ण मिलाकर रख ले। यह दाडिमाष्टक चूर्ण गुणों में कपित्थाष्टक के गुणों के समान है। इसका प्रयोग अवस्था के अनुसार वातातिसार में कहे गये खल आदि के साथ सेवन करे।

कफातिसार नाशक खल–

सविडङः समरिचः सकपित्थः सनागरः।
चांगेरीतक्रकोलाम्लः खलः श्लेष्मातिसारजित्।।

अर्थ : वायविडगं, मरिच, कैथ का गूदा, सोंठ, चांगेरी, तक्र तथा खट्टे बेर से बनाया खल कफातिसार को दूर करता है।

क्षीणे श्लेष्मणिपूर्वोक्तमम्लं लाक्षादिषट्पलम्।
पुराणं वा घुतं दद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम्।।

अर्थ : अतिसार में कफ के क्षीण होने पर पूर्वोक्त अम्लघृत, लाक्षादिघृत तथा यक्ष्मोक्त षट्पल घृत अथवा पुराना घृत, यवागू तथा मण्ड मिलाकर प्रयोग करे।

वात–कफ विवन्ध में पिच्छावस्ति–

वातश्लेष्मविबन्धे च स्रवत्यतिकफेऽपि वा।
शूले प्रवाहिकायां वा पिच्छाबस्तिः प्रशस्यते।
वचाबिल्वकणाकुष्ठशताह्वालवणान्वितः।

अर्थ : वात तथा कफ के विबन्ध में अथवा कफ के अधिक स्राव होने पर अथवा शूल तथा प्रवाहिका में पिच्छावस्ति प्रशस्त है। पिच्छावस्ति में वच, बेल, पीपर, कूट, सौंफ तथा सेन्धानमक मिलाकर प्रयोग करें।

कफ–वातातिसार में अनुवासन वस्ति–

विल्वतैलेन तैलेन वचाद्यैः साधितेन वा।।

बहुशः कफवातार्ते कोष्णेनान्वासनं हितम्।

अर्थ : कफ–वात से पीडित अतिसार रोग में बिल्व तैल (बेलगिरि के कल्क के साथ सिद्ध तैल) तथा वच आदि द्रव्यों से सिद्ध तैल में थोड़ा गरम जल मिलाकर अनेक वार अनुवासनवस्ति देना हितकर है।

कफक्षीण होने पर चिरकालिक अतिसार में उपचार–

क्षीणे कफे गुदे दीघकालातीसारदुर्बले।।
अनिलः प्रबलोऽवश्यं स्वस्थानस्थः प्रजायते।
स बलो सहसा हन्यात्तस्मात्तं त्वरया जयेत्।।
वायोरनन्तरं पित्तं पित्तस्याऽनन्तरं कफम्।
जयेत्पूर्वं त्रयाणां वा भवेद्यो बलवत्तमः।।

अर्थ : कफ के क्षीण होने पर तथा अधिक दिन तक अतिसार के रहने के कारण गुदा के दुर्बल हो जाने से अपने स्थान (गुदमण्डल–पक्वाधान) में स्थित वायु अवश्य प्रबल हो जाता है। वह बलवान् वायु रोगी को सहसा मार डालता है। अतः उसको शीघ्र ही उपचार के द्वारा शान्त करना चाहिए। वायु को शान्त करने के बाद पित्त को शान्त करे और पित्त के शान्त होने पर कफ को शान्त करे अथवा इन तीनों में जो दोष अधिक बलवान् हो उसको पहले शान्त करे।

भयज तथा शोकज अतिसार का उपचार–

भीशोकाभ्यामपि चलः शीघ्रं कुप्यत्यतस्तयोः।
कार्याक्रिया वातहरा हर्षणाश्वासनानि च।।

अर्थ : भयज तथा शोकज अतिसार में भी वायु शीघ्र ही प्रकुपित होती है। अतः इन दोनों के कारण उत्पन्न अतिसार में वात शामक उपचार तथा प्रसन्न करने वाली तथा आश्वासन देने वाली क्रिया करनी चाहिए।

उल्लाघलक्षणम्–

अतसार निवृत्ति के लक्षण–

यस्योच्चाराद्विना मूत्रं पवनो वा प्रवर्तते।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य शान्तस्तस्योदरामयः।।

अर्थ : प्रदीप्त अग्नि तथा लघु कोष्ठ वाले जिस अतिसार के रोगी का मल निकले विना मूत्र या अपानवायु निकले तो उसके उदररोग (अतिसार ग्रहणी रोग) को शान्त समझना चाहिए।

□□□□□

तृतीय अध्याय

अथाऽतो ग्रहणीदोषचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः।।

अर्थ : अतिसारचिकित्सा व्याख्यान के बाद ग्रहणी दोष की चिकित्सा का व्याख्यान करेंगे ऐसा आत्रेयादि महर्षियों ने कहा था।

ग्रहणी में अजीर्णोपचार—

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत्।
अतीसारोक्तविधिना तस्यामं च विपाचयेत्।।

अर्थ : ग्रहणी को आश्रित कर स्थित दोषों की अजीर्ण के समान चिकित्सा (लंघन—स्वेदनादि) करे और अतिसार रोग में विहित आमपाचन विधि का प्रयोग करे।

ग्रहणी विकार में यवागू आदि का प्रयोग—

अन्नकाले यवाग्वादि पच्चकोलादिभिर्युतम्।
वितरेत्पटुलघ्वन्नं पुनर्योगांश्च दीपनान्।।

अर्थ : ग्रहणी के रोगी को भोजन के समय पच्चकोल आदि के पकाये जल के साथ बनाये यवागू—पेया आदि का प्रयोग करे। पुनः नमक तथा सुपच अन्न खाने को दें और अग्निदीपक (खाडव आदि) योगों का प्रयोग करें।

आम दोष ग्रहणी में पेया आदि का प्रयोग——

दद्यात्सातिविषां पेयामामे साम्लां सनागराम्।
पानेऽतिसारविहितं वारि तक्रं सुरादि च।।

अर्थ : आम दोष वाली ग्रहणी में अतीस तथा सोंठ से युक्त और अनार दाना के रस से थोड़ा अम्ल की गयी पेया का प्रयोग करें और पीने के लिए अतिसार चिकित्सा प्रकरण में कहे गये यूष, तक्र (मट्ठा) तथा सुरा आदि दें।

ग्रहणी रोग में मट्ठा के प्रयोग का हेतु—

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनग्राहिलाघवात्।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रदूषणम्।।
कषायोष्णविकाशित्वाद्रूक्षत्वाच्च कफे हितम्।
वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहि तत्।।

अर्थ : ग्रहणी के रोगियों के लिए दीपन, ग्राही तथा सुपच होने के कारण मट्ठा पथ्य है। इसका परिपाक मधुर होने के कारण यह पित्त को प्रकुपित नहीं करता है। कषाय, उष्ण, विकाशी तथा रूक्ष होने से कफज ग्रहणी में हितकर

हैं। वातज ग्रहणी में स्वादु, अम्ल तथा सान्द्र (गाढ़ा) गुण होने के कारण सद्यस्क (तत्काल का बनाया गया) मट्ठा विदाही नहीं होता है।

ग्रहणी रोग में चतुरम्लादि चूर्ण–

चतुर्णां प्रस्थमम्लानां त्र्यूषणाच्च पलत्रयम्।
लवणानां च चत्वारि शर्करायाः पलाष्टकम्।।
तच्चूर्णं शाकसूपान्नरागादिष्ववचारयेत्।
कासाजीर्णारूचिश्वासहृत्पार्श्वामयशूलनुत्।।

अर्थ : चारों अम्ल द्रव्य (वृक्षाम्ल, अम्लवेंत, अनारदाना तथा खट्टे बेर) का चूर्ण एक प्रस्थ (1 किलो), त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच) तीन पल (150 ग्राम) पंचलवण चार पल (200 ग्राम) तथा शक्कर आठ पल (400 ग्राम) इन सब का चूर्ण बनावें और शाक, दाल, अन्न तथा खाडव राग आदि में मिलाकर भोजन दें। यह कास, अजीर्ण, अरूचि, श्वास, हृदय रोग, पार्श्वरोग तथा शूल को दूर करता है।

ग्रहणी में नागरादिक्वाथ एवं कल्क योग–

नागरातिविषामुस्तं पाक्यमामहरं पिबेत्।
उष्णाम्बुना वा तत्कल्कं नागरं वाऽथवाऽभयाम्।।
ससैन्धवं वचादिं वा तद्वन्मदिरयाऽथवा।

अर्थ : सोंठ, अतीस, पाक्या तथा नागर मोथा समभाग इन सब का आमनाशक क्वाथ पान करे अथवा पूर्वोक्त द्रव्यों का कल्क या सोंठ, अथवा हर्रे का चूर्ण गरम जल से पी ले अथवा वचादिगण का चूर्ण सेन्धा नमक मिलाकर गरम जल से अथवा उसी प्रकार सेन्धा नमक युक्त वचादि गण का कल्क या चूर्ण मदिरा के साथ पान करें।

ग्रहणी रोग में उपद्रवानुसार विविध योग–

वर्चस्यामें सप्रवासे पिबेद्वा दाडिमाम्बुना।।
विडेन लवणं पिष्टं बिल्वचित्रकनागरम्।
सामे कफानिले कोष्ठे रूक्करे कोष्णवारिणा।।

अर्थ : ग्रहणी रोग में आम (अपरिपक्व) पुरीष होने पर, विड नमक को पीसकर अनार के रस के साथ पान करे अथवा पुरीष के आम होने, कफ–वात के कोष्ठ

वमनादि उपद्रव युक्त ग्रहणी रोग में कलिगदि तथा पथ्यादि चूर्ण–

कलिंगहिङ्ग्वतिविषा–वचासौवर्चलाभयम्।
छर्दिहृद्रोगशूलेषु पेयमुष्णेन वारिणा।।
पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णं मरिचसंयुतम्।

अर्थ : वमन, हृदय रोग तथा शूलयुक्त ग्रहणीरोग में इन्द्र जब, हींग, अतीस,

वच, सौवर्चल नमक तथा हर्रे समभाग इन सब का चूर्ण गरम जल के साथ पान करे या हर्रे, सौवर्चल नमक तथा जीरा इन सब का चूर्ण मरिच का चूर्ण मिलाकर गरम जल से पान करे।

ग्रहणी में अग्नि वर्द्धनार्थ पिप्पलादि चूर्ण–

पिप्पलीं नागरं पाठां सारिवां बृहतीद्वयम्।।
चित्रकं कौटजं क्षारं तथा लवणपच्चकम्।
चूर्णीकृतं दधिसुरातन्मण्डोष्णाम्बुकाज्जिकैः।।
पिबेदग्निविवृद्धयर्थं कोष्ठवातहरं परम्।

अर्थ : पीपर, सोंठ, पाठा, सारिवा कण्टकारी, वनभंटा, चित्रक, इन्द्र जब, यव क्षार तथा पच्च लवण (सेन्धा, सौवर्चल, विड, सामुद्र, उद्भिद नमक), समभाग इन सब का चूर्ण दही, सुरा, सुरा मण्ड, उष्ण जल या काज्जी के साथ जाठराग्नि को बढ़ाने के लिए पान करे। यह कोष्ठगत प्रदूषित वायु को अच्छी तरह शान्त करता है।

ग्रहणी में लवण पच्चकादि गुटिका–

पटूनि पच्च द्वौ क्षारौ मरिचं पच्चकोलकम्।।
दीप्यकं हिङ्गु गुलिका बाजपूररसे कृता।
कोलदाडिमतोये वा परं पाचनदीपनी।।

अर्थ : पाचों नमक (सेन्धा, सौवर्चल, विड, सामुद्र, उद्भिद नमक), दोनों क्षार (जवक्षार, सज्जीक्षार), मरिच, पच्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), अजवायन तथा हींग समभाग इन सब को विजौरा नीम्बु के रस में घोटकर गुटिका बनावे अथवा वनवेर के रस या अनार के रस के साथ घोटकर गुटिक बनावे। यह जाठराग्नि दीपक तथा पाचक गुटिका है।

ग्रहणी में तालीसादि गुटिका–

तालीसपत्रचविकामरिचानां पलं पलम्।
कृष्णा–तन्मूलयोर्द्वे द्वे पले शुण्ठीपलत्रयम्।।
चातुर्जातमुशीरं च कर्षांशं श्लक्ष्णचूर्णितम्।
गुडेन वटाकान्कृत्वा त्रिगुणेन सदा भजेत्।।
मद्य–यूष–रसाऽरिष्टमस्तु–पेयापयोऽनुपः।
वातश्लेष्मात्मनां छर्दिग्रहणीपार्श्वहृद्रुजाम्।।
ज्वरश्वयथुपाण्डुत्वगुल्पानात्ययार्शसाम्।
प्रसेकपीनसश्वासकासानां च निवृत्तये।।
अभयां नागरस्थाने दद्यादत्रैव विड्ग्रहे।
छर्द्यादिषु च पैत्तेशु चतुर्गुणसितान्विताः।।

पक्वेन वटकाः कार्या गुडेन सितयाऽपि वा।
परं हि वह्निसम्पर्काल्लघिमानं भजन्ति ते।।

अर्थ : तालीस पत्र, चव्य तथा मरिच एक एक पल (प्रत्येक 50 ग्राम), पीपर तथा पिपरा मूल दो दो पल (प्रत्येक 100 ग्राम), सोंठ तीन पल (150 ग्राम), चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर) तथा खस एक–एक कर्ष (प्रत्येक 10 ग्राम), इन सब का महीन चूर्ण बनाकर गुड़ चूर्ण के तीन गुना मिलाकर वटक बनावे और सदा सेवन करे। इस का सेवन मद्य, यूष, अरिष्ट, मस्तु, पेया तथा दूध के अनुपान से करे। यह वात–कफ जन्य वमन, ग्रहणी, पार्श्व शूल, ह्रदयरोग, ज्वर, शोथ, पाण्डु गुल्म, पानात्यय, अर्श रोग, प्रत्सेक, पीनस रोग, श्वास तथा कास रोग की निवृति के लिए हमेशा सेवन करे। यदि विबन्ध हो तो इसी योग में सोंठ के स्थान में हर्रे का मिला दे। पैत्तिक छर्दि आदि में चौगुना शक्कर मिलाकर गुटिका बनावें। गुड़ या चीनी का पाक बनाकर गुटिका बनानी चाहिए। ये गुटिकायें अग्नि के सम्पर्क से लघु (हल्की) हो जाती है।

निरामग्रहणी का उपचार–

अथैनं परिपक्वाममारूतग्रहणीगदम्।
दीपनीययुतं सर्पिः पाययेदल्पशो भिषक्।।
किञ्चित्सन्धुक्षिते त्वग्नौ सक्तविण्मूत्रमारूतम्।
द्वयहं त्र्यहं वा संस्नेह्य स्विन्नाभ्यक्तं निरूहयेत्।।
तत एरण्डतैलेन सर्पिषा तैल्वकेन वा।
सक्षारेणाऽनिले शान्ते स्रस्तदोषं विरेचयेत्।।

अर्थ : वाज जन्य ग्रहणी रोग में आम दोष के परिपक्व हो जाने पर दीपनीय द्रव्यों को मिलाकर थोड़ा–थोड़ा घृत पान कराये। अग्नि के थोड़ा प्रदीप्त हो जाने पर तथा पुरीष, मूत्र एवं वायु की गति में अवरोध होने पर अथवा दो या तीन दिन स्नेह पान कराकर स्नेहन तथा अभ्यज्जन कर निरूहण वस्ति का प्रयोग करे। निरूहण वस्ति देने के बाद वात के शान्त हो जाने पर तथा दोषों के शिथिल हो जाने पर एरण्ड तैल या तैल्वक घृत में यवक्षार मिलाकर विरेचन कराये।

ग्रहणी रोग में अनुवासन वस्ति–

शुद्धरूक्षाशयं वद्धवर्चस्कं चाऽनुवासयेत्।
दीपनीयाम्लवातघ्नसिद्धतैलेन तं ततः।।
निरूढं च विरिक्तं च सम्यक्चाऽप्यनुवासितम्।
लघ्वन्नप्रतिसंयुक्तं सर्पिरभ्यासयेत्पुनः।।

अर्थ : शुद्ध तथा रूक्ष मलाशय वाले और विबन्ध वाले ग्रहणी के रोगी को दीपन

द्रव्यों, अम्ल द्रव्यों तथा वातनाशक द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध तैल को अनुवासन वस्ति दे। इसी प्रकार निरूहण, विरेचन तथा अनुवासन वस्ति को अच्छी तरह देने के बाद लघु अन्न, पेया, यवागु आदि में घी मिलाकर हमेशा सेवन कराये।

ग्रहणी में पच्च मूलादि घृत–

पच्चमूलामयाव्योषपिप्पलीमूलसैन्धवैः।
रास्नाक्षारद्वयाजाजीविडगंशटिभिर्घृतम्।।
शुक्तेन मातुलुगस्य स्वरसेनार्द्रकस्य वा।
शुष्कमूलककोलाम्लचुक्रीकादाडिमस्य च।।
तक्रमस्तुसुरामण्डसौवारकतुषोदकैः।
काज्जिकेन च तत्पक्वमग्निदीप्तिकरं परम्।।
शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम्।
सबीजपूरकरसं सिद्धं वा पाययेद्घृतम्।।

अर्थ : बृहत्पच्चमूल (बेल, सोनापाठा, अरणी, गम्भारी तथा पाढल), हर्रे, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), पिपरामूल, सेन्धानमक, रास्ना, यवक्षार, सज्जीखार, जीरा, वायविडंग तथा कचूर समभाग इन सब के कल्क के साथ विजौरा निम्बू का शूक्त, अदरक का रस, सूखी मूली का क्वाथ, बेर का रस, अम्लरस, चूका का रस, अनार का रस, तक्र, मस्तु (दही का तोड़), सुरामण्ड, सौवीर, तुषोदक तथा कांज्जी इन द्रवों में घृत मिलाकर विधिवत् घृत सिद्ध करे। (घृत एक भाग कल्क चौथाई भाग तथा रस चार भाग) यह घृत उतम जाठराग्नि प्रदीपक है। यह शूल, गुल्म रोग, उदररोग, श्वास, कास, वात तथा कफ जन्य रोगों को दूर करता है अथवा विजौरा निम्बु के रस से विधिवत् सिद्ध घृत पान कराये।

ग्रहणी रोग में तैल–

तैलमभ्यज्जनार्थं च सिद्धमेभिश्चलाऽपहम्।

अर्थ : ग्रहणी रोग में अभ्यज्जन के लिए पूर्वोक्त पच्चमूल आदि के कल्क द्रव्य तथा निम्बू का शूक्त आदि द्रव के साथ विधिवत तैल सिद्ध करे। यह वातनाशक होता है।

ग्रहणी में पच्चमूलादि चूर्ण–

एतेषामौषधानां वा पिबेच्चूर्णं सुखाम्बुना।।
वातश्लेष्मावृते सामे कफे वा वायुनोद्धते।

अर्थ : ग्रहणी रोग में वायु के कफ द्वारा आवृत होने पर, कफ के आम द्वारा आवृत होने पर, वायु से कफ के प्रदूषित होने पर पूर्वोक्त पच्चमूल हर्रे आदि द्रव्यों का चूर्ण हल्का गरम जल से पान कराये।

पित्तज ग्रहणी रोग की चिकित्सा–

अग्नेर्निवपिकं पित्तं रेकेण वमनेन वा।।
हत्वा तिक्तलघुग्राहिदीपनैरविदाहिभिः।
अन्नैः सन्धुक्षयेदग्नि चूर्णैः स्नेहैश्च तिक्तकैः।।

अर्थ : ग्रहणी रोग में जब पित्त अग्नि (जाठराग्नि) को बुझा दिया हो तो उसको विरेचन या वमन के द्वारा निकालकर तिक्त, लघु, ग्राही, दीपन तथा अविदाही द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध अन्न, चूर्ण तथा तिक्तक घृत आदि से जाठराग्नि को प्रतीप्त करे।

विश्लेशण : पित्त ही अग्नि है तो वह अग्नि को बुझाने वाला कैसे हो सकता है और अग्नि के अधिक दुर्बल होने पर ही ग्रहणी रोग होता है। इस शंका पर आचार्य ने यह लिखा है कि अग्नि का निर्वापक पित्त होने पर पित्तज ग्रहणी होती है। यद्यपि पित्त को ही अग्नि कहते हैं। उनमें विशेष रूप से पाचक पित्त को ही अग्नि माना गया है और उसका स्वरूप तिल के बराबर कठिन माना गया है। शेष पित्त द्रव स्वरूप है। उस द्रव स्वरूप पित्त की शरीर में सब अधिक वृद्धि हो जाती है तो ठोस, ठोस पाचक पित्त स्वरूप अग्नि बुझ जाती है। इस आचार्य के वचन में अग्नि और पित्त भिन्न–भिन्न वस्तु है। केवल उष्ण होने से पित्त को अग्नि मानते हैं और उसी पित्त का द्रवहीन भाग पाचक पित्त है जिसे अग्नि कहते हैं। इसी प्रकार पित्त द्रव तथा अधोगामी होता है। अग्नि ठोस तथा ऊर्ध्व–गामी होता है। पाचक पित्त का स्थान आमाशयके अध ो भाग में होता है और पाचक पित्त स्वरूप अग्नि के ऊर्ध्वगामी होने से पाचन क्रिया सम्पादित होती है। जिस प्रकार चूल्हे के ऊपर पात्र में रक्खा गया पाच्य पदार्थ को चूल्हे में रखने वाला अग्नि पाक क्रिया सम्पन्न करता है इस प्रकार पाचक पित्त, अग्नि और शेष पित्त अग्नि का कार्य सम्पादक है।

पित्तज ग्रहणी में पटोलादि चूर्ण–

पटोलनिम्बत्रायन्तीतिक्तातिक्तकपर्पटम्।
कुटजत्वक्फलं मूर्वा मधुशिग्रुफलं वचा।।
दार्वीत्वक्पद्मकोशीरयवानीमुस्तचन्दनम्।
सौराष्ट्रयतिविशाव्योषत्वगेलापत्रदारू च।।
चूर्णितं मधुना लेह्यं पेयं मद्यैर्जलेन वा।
हृत्पाण्डुग्रहणीरोग–गुल्मशूलारुचिज्वरान्।।
कामलां सन्निपातं च मुखरोगांश्च नाशयेत्।

अर्थ : परवल का पत्ता, नीम का पत्ता, त्रायमाणा, कुटकी, चिरायता, पित्तपापड़ा, कोरैया की छाल, इन्द्रजब, मूर्वा, मीठा सहिजन का फल, वच,

दारू हलदी की छाल, पद्म काठ, खस, अजवायन, नागरमोथा, चन्दन, इलायची, अतीस, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), बड़ी इलायची, दालचीनी, तेजपात तथा देवदारू समभाग इन सब का चूर्ण बनावे और शहद से चाटे। मद्य अथवा जल से पान करे। यह हृदयरोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीरोग, गुल्म, शूल अरूचि, ज्वर, कामलारोग सन्निपात रोग तथा मुख रोग का नाश करता है।

पित्तज ग्रहणी में भूनिम्बादि चूर्ण–

भूनिम्बकटुकामुस्ता–त्र्यूषेणेन्द्रयवान् समान।।
द्वी चित्रकाद्वत्सकत्वग्भागान् शोडश चूर्णयेत्।
गुडशीताम्बुना पीतं ग्रहणीदोषगुल्मनुत्।।
कामलाज्वरपाण्डुत्व–मेहारूच्यतिसारजित्।

अर्थ : चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच) तथा इन्द्र जव समभाग चित्रक दो भाग तथा कोरैया की छाल सोलह भाग इन सब का चूर्ण बना ले और शीतल गुड़ के शर्बत से पान करें। यह ग्रहणी दोष तथा गुल्म रोग को दूर करता है और कामला, ज्वर, पाण्डु, प्रमेह, अरूचि तथा अतिसार का नाश करता है।

पित्तज ग्रहणी में नागरादि चूर्ण–

नागरातिविषामुस्ता–पाठाबिल्वं रसाज्जनम्।।
कुटजत्वक्फलं तिक्ता धातकी च कृतं रजः।
क्षौद्रतण्डुलवारिभ्यां पैत्तिके ग्रहणीगदे।।
प्रवाहिकाऽर्शोगुदरूग्–रक्तोत्थानेशु चेष्यते।

अर्थ : सोंठ, अतीस, नागरमोथा, पाढा, बेलगिरि, रसाज्जन, कोरैया की छाल, इन्द्र जव, कुटकी तथा धाय की फूल समभाग इन सब का चूर्ण बनावे और इस चूर्ण को पित्तज ग्रहणी रोग, प्रवाहिका, अर्श रोग के गुदा शूल तथा रक्तातिसार में मधु तथा चावल के धोवन के साथ पान करें।

चन्दनाद्यं घृतम् च।

पित्तज ग्रहणी में चन्दनादि घृत–

चन्दनं पद्मकोशीरं पाठां मूर्वा कुटन्नटम्।।
शङ्ग्रन्थासारिवाऽऽस्फोता–सप्तपर्णाऽऽटरूपकान्।
पटोलोदुम्बराश्वत्थवटप्लक्षमपीतनम्।।
कटुकां रोहिणीं मुस्तां निम्बं च द्विपलांशकान्।
द्रोणेऽपां साधयेतेन पचेत्सर्पिः पिचून्मितैः।।
किराततिक्तेन्द्रयव–वीरामागधिकोत्पलैः।
पित्तग्रहण्यां तत्पेयं कुष्ठोक्तं तिक्तकं च यत्।।

अर्थ : चन्दन, पद्म काठ, खस, पाठा, मूर्वा, सोना पाठा, वच सारिवा,

अपराजिता, सप्त पर्ण (सतिवन) अडूसा परवलपत्र, गूलर, पीपर, बरगद, पकड़ी, वेतस, कुटकी, हर्रे, नागरमोथा तथा नीम दो दो पल (प्रत्येक 100 ग्राम) इन सब को जल एक द्रोण (16 किलो) में पकावें और चौथाई शेष रहने पर छान लें और इसमें चिरायता, इन्द्र जव, काकोली, पीपर तथा कमल एक–एक पिचु (10 ग्राम) इन सब के कल्क के साथ विधिवत् घृत सिद्ध करें। इस घृत को पित्तज ग्रहणी रोग में पीवें। या इस ग्रहणी रोग में कुष्ठ प्रकरण में कुष्ठ प्रकरण में उक्त तिक्तक घृत पान करें।

कफज ग्रहणी चिकित्सा–

ग्रहण्यां श्लेष्मदुष्टायां तीक्ष्णैः प्रच्छर्दने कृते।
कट्वम्ललबणक्षारैः क्रमादग्नि विवर्धयेत्।।
पच्चकोलाभयाधान्य–पाठागन्धपलाशकैः।
बीजपूरप्रवालैश्च सिद्धैः पेयादि कल्पयेत्।।

अर्थ : कफ विकृति जन्य ग्रहणी में तीक्ष्ण द्रव्यों से विधिवत् वमन करने पर कटु, अम्ल तथा लवण रस प्रधान एवं क्षारीय पदार्थों से क्रमशः जाठराग्नि को प्रदीप्त करें और पच्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), हर्रे, ध ानिया, पाठा, गन्ध पलास (तेजपत्ता) तथा विजौरा नींबू के पत्र समभाग इन सबों के पकाये जल से सिद्ध पेया आदि का निर्माण कर भोजन के लिए दें।

कफज ग्रहणी में मधूकासव–

मधूकाऽऽसवः।
द्रोणं मधूकपुष्पाणां विडगं च ततोऽर्धतः।
चित्रकस्य ततोऽर्ध च तथा भल्लातकाढकम्।।
मज्जिष्ठाऽष्टपलं चैतज्जलद्रोणत्रये पचेत्।
द्रोणशेशं स्रुतं भीतं मध्वर्धाढकसंयुतम्।।
एलामृणालागुरूभिश्चन्दनेन च रूषिते।
कुम्भे मासं स्थितं जातमासवं तं प्रयोजयेत्।।
ग्रहणीं दीपयत्येश बृंहणः पित्तरक्तनुत्।
शोषकुष्ठकिलासानां प्रमेहाणां च नाशनः।।

अर्थ : महुआ का फूल एक द्रोण (16 किलो), विडंग (8 किलो), चित्रक (4 किलो), शुद्ध भल्ला तक एक आढक (4 किलो) तथा मजीठ आठ पल (400 ग्राम) इन सब को जल तीन द्रोण (48 किलो) में पकावे और एक द्रोण (16 किलो) जल शेष रह जाय तो छानकर शीतल होने पर मधु आधा आढक (12 किलो) मिलाकर बड़ी इलायची, कमल नाल, अगर तथा सफेद चन्दन इन सब के कल्क से लिप्त भाण्ड में एक मास तक रक्खें। इसके बाद आसव तैयार

हो जाने पर निकाल कर तथा छान कर प्रयोग करें। यह मधूकासव ग्रहणी को प्रदीप्त करता है तथा ग्रहणी को बल देता है और पित्त एवं रक्त विकार को दूर करता है। यह शोष, कुष्ठ, किलास (श्वित्र) तथा प्रमेह रोगों का नाश करता है।

लघुमधूकासवः।

ग्रहणी में द्वितीय मधूकासव–

मधूकपुष्पस्वरसं शृतमर्धक्षयीकृतम्।
क्षौद्रपादयुतं शीतं पूर्ववत्सन्निधापयेत्।।
तत्पिबन् ग्रहणीदोषान् जयेत्सर्वान् हिताशनः।

अर्थ : महुआ के स्वरस को लेकर पका ले। आधा शेष रह जाने पर छान कर ठंढा होने पर चौथाई भाग शहद मिलाकर तथा इलायची आदि के कल्क से लिप्त भाण्ड में एक मास तक रक्खे। इसके बाद निकाल कर तथा छानकर पान करे। यह हितक आहार सेवन करते हुए पान करने से सभी ग्रहणी विकारों को दूर करता है।

ग्रहणी रोग में विभिन्न आसव–

तद्वद्द्राक्षेक्षुखर्जूरस्वरसानासुतान् पिबेत्।।

अर्थ : पूर्वोक्त प्रकार से मुनक्का, गन्ना तथा खजूर के स्वरसों से विधिवत् आसव सिद्ध कर ग्रहणी रोग में पान करे।

हिगंग्वादिक्षारः।

ग्रहणी में हिंग्वादि क्षार–

हिगगुतिक्तावचामाद्रीपाठेन्द्रयवगोक्षुरम्।
पच्चकोलं च कर्षांशं पलांशं पटुपच्चकम्।।
घृततैलद्विकुडवे दध्नः प्रस्थद्वये च तत्।
आपोथ्य क्वाथयेदग्नौ मृदावनुगते रसे।।
अन्तर्धूमं ततो दग्ध्वा चूर्णीकृत्य घृताप्लुतम्।
पिबेत्पाणितलं तस्मिन् जीर्णे स्यान्मधुराशनः।।
वातश्लेष्मामयान् सर्वान् हन्याक्ष्द्विषगरांश्चसः।

अर्थ : हींग, कुटकी, वच, अतीस, पाठा, इन्द्रजव, गोखरू, तथा पच्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) एक एक कर्ष (प्रत्येक 10 ग्राम), पटुपच्चक (सेन्धा, सौवर्चल, वडि, सामुद्र, उद्भिजनमक) एक एक पल (प्रत्येक 50 ग्राम) इन सब का चूर्ण बनाकर घृत एक कुड़व (250 ग्राम), तैल एक कुड़व (250 ग्राम) तथा दही दो प्रस्थ (2 किलो) में मिलाकर मन्द आँच पर पकावे। सूख जाने पर अन्तर्धूम जलाकर शीतल होने पर पीस कर रख लेंह। इसके बाद उसमें से एक पाणितल (10 ग्राम) लेकर तथा घृत में मिलाकर पान करे। पच जाने पर मधुर रस प्रधान भोजन करे। यह ग्रहणी रोग, वात तथा कफ

जन्य रोगों का और सभी प्रकार के विष एवं गर विष का नाश करता है।

ग्रहणी में भूनिम्बादिक्षार–

भूनिम्बं रोहिणी तिक्तां पटोलं निम्बपर्पटम्।।
दग्ध्वा माहिषमूत्रेण पिबेदग्निविवर्धनम्।

अर्थ : चिरायता कुटकी, परवल, नीम तथा पित्त पापड़ा समभाग इन सब को अन्तर्धूम जलाकर, गाय के मूत्र के साथ पान करे। यह जाठराग्नि को बढ़ाने वाला है। (जाठराग्नि बढ़ने से ग्रहणी रोग शान्त होता है)।।

ग्रहणी में हरिद्रादि क्षार–

द्वे हरिद्रे वचां कुष्ठं चित्रकः कटुरोहिणी।।
मुस्ता च छागमूत्रेण सिद्धः क्षारोऽग्निवर्धनः।

अर्थ : दोनों हल्दी (दारू, हलदी, हलदी), वच, कूट, चित्रक, कुटकी तथा नागरमोथा इन सब के चूर्ण को गाय के मूत्र में घोंटकर अन्तर्धूम जलाकर क्षार तैयार करे। यह क्षार जाठराग्नि को बढ़ाता है तथा ग्रहणी रोग को शान्त करता है।

ग्रहणी में क्षार गुटिका–

चतुःपलं सुधाकाण्डात्त्रिपलं लवणत्रयात।।
वार्ताककफडवं चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले।
दग्ध्वा रसेन वार्ताकाद् गुटिका भोजनोत्तरा।।
भुक्तमन्नं पचन्त्याशु कासश्वासार्शसां हिताः।
विसूचिका–प्रतिश्याय–हृद्रोगशमनाश्च ताः।।

अर्थ : सेहुंड की तना चारपल (200 ग्राम), लवणत्रय (सेन्धा, सांभर, विड) तीन पल (150 ग्राम), वन भंटा एक कुडव (250 ग्राम), मदार की जड़ आठपल (400 ग्राम) तथा चित्रक दो पल (100 ग्राम) इन सब को अन्तर्धूम जलाकर बनभंटा के रस के साथ गुटिका बनावे और भोजन के बाद खाय। यह खाये अन्न को शीघ्र ही पचाता है और कास तथा श्वास के लिए हितकर है। इनके अन्तरिक्त विसूचिका, प्रतिश्याय तथा हृदय रोग को शान्त करता है।

मातुलुगंदि चूर्ण–

मातुलुगंशठीरास्ना–कटुत्रयहरीतकीः।
स्वर्जिकायावशूकाख्यौ क्षारौपच्च पटूनि च।।
सुखाम्बुपीतं तच्चूर्णं बलवर्णाग्निवर्धनम्।

अर्थ : कचूर, रास्ना, कटुत्रय (सोंठ, पीपर, मरिच), हर्रे, सज्जीखार, यवक्षार, पच्चपटु (सेन्धा नमक, सामर, सौवर्चल, विड, उद्भिज) समभाग इन सब का चूर्ण बनाकर विजौरा नींबू के रस से भावित कर सुखा ले और चूर्ण बना ले।

यह चूर्ण थोड़ा गरम जल के साथ खाने से बल, वर्ण तथा जाठराग्नि को बढ़ाता है। (अथवा नींबू के रस में गोली बनाकर थोड़ा गरम जल के साथ भक्षण करे)।।

कफज ग्रहणी में मातुलुंगादि घृत--

श्लैष्मिके ग्रहणीदोषे सवाते तैर्घृतं पचेत्।।
धान्वन्तरं शट्पलं च भल्लातकघृताभयम्।

अर्थ : कफज ग्रहणी विकार में वात का अनुबन्ध होने पर पूर्वोक्त मातुलुंगदि द्रव्यों के कल्क के साथ विधिवत् घृत सिद्ध करे अथवा धान्वन्तर घृत या षटपल घृत या भल्लातक घृत या अभया घृत पान करें।

ग्रहणी रोग में क्षार घृत--

बिडकाचोषलवणस्वर्जिकायावशूकजान्।।
सप्तलां कण्टकारी च चित्रकं चैकतो दहेत्।
सप्तकृत्वः सुतस्याऽस्य क्षारस्याऽधढिके पचेत्।।
आढकं सर्पिषः पेयं तदग्निबलवृद्धये।

अर्थ : विडनमक, काचनमक, खारीनमक, सज्जी खार, यवक्षार, सात धार की सेहूंड और सातला, कण्टकारी तथा चित्रक को जला ले और इन सब को सात बार जल में छान लें। इसके बाद उस क्षार जल आधा आढक (2 किलो) में घृत एक आढक (4 कि.) विधिवत् पकावे और जाठराग्नि तथा बल को बढ़ाने के लिए पान करे।

सन्निपातज ग्रहणी में उपचार--

निचये पच्चकर्माणि युज्ज्याच्चैतद्यथाबलम्।।

अर्थ : त्रिदोष ज ग्रहणी रोग में पंच्चकर्म करे और बल तथा अग्नि के अनुसार पूर्वोक्त घृत, क्षार, आसव, अरिष्ट तथा चूर्ण, गुटिका आदि का सेवन करें।

ग्रहणी में गुदस्राव की चिकित्सा--

प्रसेके श्लैष्मिकेऽल्पाग्नेर्दीपनं रूक्षतिक्तकम्।
योज्यं कृशस्य व्यत्यासात्स्निग्धरूक्षं कफोदये।
क्षीणक्षामशरीरस्य दीपनं स्नेहसंयुतम्।
दीपनं बहुपित्तस्य तिक्तं मधुरकैर्युतम्।।
स्नेहोऽम्ललवणैर्युक्तो बहुवातस्य शस्यते।

अर्थ : ग्रहणी रोग में मन्दाग्नि व्यक्ति के कफ प्रधान गुदा मार्ग से प्रसेक (स्राव) हो तो दीपन, रूक्ष तथा तिक्त द्रव्यों का प्रयोग करे। यदि ग्रहणी का रोगी कृश हो और कफ की अधिकता हो तो व्यत्यास क्रम में कभी स्निग्ध तथा कभी रूक्ष द्रव्यों का प्रयोग करे। यदि रोगी क्षीण तथा दुर्बल शरीर वाला

हो तो स्नेहयुक्त दीपन औषध का प्रयोग करे। अधिक पित्त वाले व्यक्ति के लिए दीपन तथा मधुर द्रव्यों से मिला हुआ तिक्त रस प्रधान द्रव्यों का सेवन करे।

वात प्रधान ग्रहणी की चिकित्सा—

स्नेहमेव परं विद्याद्दुर्बलानलदीपनम्।।
नालं स्नेहसमिद्धस्य शमायान्नं सुगुर्वपि।।

अर्थ : वात प्रधान ग्रहणी रोग में अम्ल तथा लवण रसप्रधान द्रव्यों से युक्त स्नेह का प्रयोग प्रशस्त है। दुर्बल अग्नि को प्रदीप्त करने वाला स्नेह को ही उत्तम समझें। स्नेह से प्रदीप्त अग्नि को गुरू अन्न भी शान्त करने में समर्थ नहीं होता है।

विश्लेशण : मन्दाग्नि वाले मनुष्य का अग्नि स्नेह से बहुत जल्दी और अच्छी तरह प्रदीप्त होता है। यदि वह कटु, अम्ल तथा तिक्त द्रव्यों के साथ प्रयोग किया जाय। केवल घृत का सेवन अग्नि को मन्द करता है। अतः मन्दाग्नि व्यक्ति को केवल घृत का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

कफक्षीण, द्रव पुरीषग्रहणी रोग में घृत—

योऽल्पाग्नित्वात्कफे क्षीणे वर्चः पक्वमपि भलथम्।।
मुञ्चेद् यद् द्वयौषधयुतं स पिबेदल्पशो घृतम्।
तेन स्वमार्गमानीतः स्वकर्मणि नियोजितः।।
समानो दीपयत्यग्निमग्नेः सन्धुक्षको हि सः।

अर्थ : कफ के क्षीण होने पर मन्दाग्नि होने से जो व्यक्ति परिपक्व तथा पतला पुरीष त्याग करता है वह सेन्धानमक तथा सोंठ का चूर्ण मिलाकर घृत पान करे। उससे अपने मार्ग में लाया गया तथा अपने कर्म में नियुक्त समान वायु जाठराग्नि को प्रदीप्त करती है क्योंकि वह जाठराग्नि का संधुक्षक होती है। अर्थात् जाठराग्नि को प्रदीप्त करने के लिए धौकनी का काम करती है।

कठिन पुरीष ग्रहणी की चिकित्सा—

पुरीषं यश्च कृच्छ्रणे कठिनत्वाद्विमुञ्चति।।
स घृतं लवणैर्युक्तं नरोऽन्नावग्रहं पिबेत्।

अर्थ : यो ग्रहणी का रोगी कठोर (कड़ा) होने के कारण कठिनाई से पुरीष त्याग करता है वह व्यक्ति सेन्धानमक मिला हुआ घृत भोजन के बाद पीवे।

अवस्थानुसारग्रहणी रोग की चिकित्सा—

रौक्ष्यान्मन्देऽनले सर्पिस्तैलं वा दीपनैः पिवेत्।।
क्षारचूर्णासवारिश्टान् मन्दे स्नेहातिपानतः।
दावर्तात्प्रयोक्तव्या नियहस्नेहबस्तयः।।
दोषाऽतिवृद्धयामन्देऽग्नौ संशुद्धोऽन्नविधि चरेत्।

व्याधिमुक्तस्य मन्देऽग्नौ सर्पिरेव तु दीपनम्।।
अध्वोपवासक्षामत्वैर्यवाग्वा पाययेद् घृतम्।
अन्नावपीडितं बल्यं दीपनं बृंहणं च तत्।।

अर्थ : ग्रहणी रोग में रूक्षता के कारण अग्नि के मन्द होने पर दीपन द्रव्यों से सिद्ध घृत या तैल पान करे। स्नेह के अधिक पान करने से अग्नि के मन्द होने पर क्षार चूर्ण, आसव तथा अरिष्ट को पान करे। यदि ग्रहणी रोग में उदावर्त हो तो निरूहन तथा स्नेहन वस्ति का प्रयोग करे। दोषों के अधिक बढ़े होने के कारण अग्नि के मन्द होने पर वमन–विरेचनादि के द्वारा संशोधन करने पर अन्न विधि (पेया मण्ड आदि) का प्रयोग करे। ग्रहणी रोग से मुक्त होने पर घृत ही जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है। मार्ग गमनं, उपवास तथा दुर्बलता के कारण जाठराग्नि के मन्द होने पर यवागू के साथ घृत पान करे। यह घृत भोजन के मध्य में सेवन करना बलकारक जाठराग्निदीपक तथा शरीर वर्द्धक होता है।

ग्रहणी रोग में स्नेह–आदि का फल–

स्नेहासवसुरारिष्टचूर्णक्वाथहिताशनैः।
सम्यक् प्रयुक्तैर्देहस्य बलमग्नेश्च वर्धते।।

अर्थ : ग्रहणी रोग में ग्रहणी रोग शामक स्नेह, आसव, सुरा, अरिष्ट, चूर्ण तथा क्वाथ एवं हितकर भोजन अच्छी तरह प्रयोग करने से शरीर तथा अग्नि का बल बढ़ता है।

ग्रहणी रोग में स्नेहन एवं आहार की आवश्यकता–

दीप्तो यथैव सथाणुश्च बाहयोऽग्निः सारदारूभिः।
सस्नेहैजयिते तद्वदाहारैः कोश्ठगोऽनलः।।
नाऽभोजनेन कायाग्निर्दीप्यते नाऽतिभोजनात्।
यथा निरिन्धनोवह्निरल्पो वाऽतीन्धनावृतः।।

अर्थ : जिस प्रकार बाह्य अग्नि सारयुक्त लकड़ी से प्रदीप्त स्थाई होती है उसी प्रकार स्नेहयुक्त भोजन से प्रदीप्त जाठराग्नि स्थाई होती है। भोजन न करने से या अधिक करने से जाठराग्नि प्रदीप्त नहीं रहती। जैसे ईन्धन रहित या अधिक ईन्धन से ढकी अग्नि प्रदीप्त नहीं होती है।

अत्यग्निमाह–

अत्यग्निपुरूष का लक्षण–

यदा क्षीणे कफे पित्तं स्वस्थाने पवनानुगम्
प्रवृद्धं वर्धयत्यग्निं तदाऽसौ सानिलोऽनलः।।
पक्त्वाऽन्नमाशु धातूंश्च सर्वानोजश्च संक्षिपन्।
मारयेत्साशनात्स्वस्थो भुक्ते जीर्णे तु ताम्यति।।

तृट्कासदाहमूर्च्छाद्या व्याधयोऽत्यग्निसम्भवाः।
तमत्यग्निं गुरूस्निग्धमन्दसान्द्रहिमस्थिरैः।।
अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं दीप्तमग्निमिवाम्बुभिः।
मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यान्यस्योपहारयेत्।।
निरिन्धनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैनं न विपादयेत्।

अर्थ : जब कफ के क्षीण हो जाने पर पित्त अपने स्थान में स्थित वायु के साथ बढ़कर अग्नि को बढ़ाता है तब वह वायुयुक्त अग्नि अन्न को शीघ्र ही पचाकर सभी धातुओं तथा ओज को निकालकर मार डालता है। इस समय भोजन करने से मनुष्य स्वस्थ रहता है और भोजन के पच जाने पर कष्ट युक्त हो जाता है और प्यास, कास, दाह, मूर्च्छा आदि रोग अधिक अग्नि से उत्पन्न हो जाते हैं। उस प्रदुद्ध अग्नि को गुरू, स्निग्ध, मन्द्र, सान्द्र, हिम, तथा स्थिर अन्न–पान से शान्त करें। जेसे प्रदीप्त अग्नि को जल शान्त करता है। इस स्थिति में अजीर्ण रहने पर भी बार–बार भोजन दें, जिससे आहार रूपी ईन्धन के न मिलने से रोगी को न मार दे।

अत्यग्नि रोगी की चिकित्सा–

कृशरां पायसं स्निग्धं पैष्टिकं गुडवैकृतम्।।
अश्नीयादौदकानूपपिशितानि भृतानि च।
मत्स्यान्विशेषतः श्लक्ष्णान् स्थिरतोयचराश्च ये।।
आविकं सुभृतं मांसमद्यादत्यग्निवारणम्।
पयः सहमधूच्छिष्टं घृतं वा तृषितः पिबेत्।।
गोधूमचूर्ण पयसा बहुसर्पिःपरिपलुतम्।
आनूपरसयुक्तान्वा स्नेहांस्तैलविवर्जितान्।।
श्यामात्रिवृद्विपक्वं वा पयो दद्याद्विरेचनम्।
असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम्।।
यत्किञ्चिद्गुरू मेद्यं च श्लेष्मकारि च भोजनम्।
सर्व तदत्यग्निहितं भुक्त्वा च स्वपनं दिवा।।

अर्थ : जिसकी जाठराग्नि अधिक बढ़ी हो वह खिचड़ी, पायस (खीर–रबड़ी आदि) स्निग्ध पौष्टिक तथा गुड़ के बने पदार्थ गुड़ राब आदि खायें और जल में रहने यह अत्यधिक प्रबुद्ध जाठराग्नि को शान्त करने वाले हैं। प्यास लगने पर सोम के साथ दूध या घृत पान करे। गेहूँ की आटा का अधिक घी मिलाकर बनाया हुआ हलुआ खायें या बिना अन्य स्नेहों को मिलाकर पान करे अथवा श्यामा निशोथ के साथ पकाये हुए दूध को विरेचन के लिए दे।

भोजन के बाद पित्तहरण करने वाले खीर को बार–बार खाय। जो गुरू, मेद्य तथा कफकारक भोजन होते हैं वे सभी अत्यधिक प्रबुद्ध अग्नि के लिए हितकर हैं और भोजन कर दिन में सोना भी अत्यधिक प्रबुद्ध अग्नि के लिए हितकर है।

अत्यग्नि से मृत्यु–

आहारमग्निः पचति दोषानाहारवर्जितः।
धातून् क्षीणेशु दोषेषु जीवितं धातुसगंक्षये।।

अर्थ : जाठराग्नि आहार को पचाती है। आहार के अभाव में दोषों के क्षीण हो जाने पर धातुओं को पचाती है तथा धातुओं के क्षय हो जाने पर मनुष्य के जीवन को नष्ट कर देती है।

जाठराग्नि की विशेषता–

एतत्प्रकृत्यैव विरूद्धमन्नं
संयागसंस्कारवशेन चेदम्।
इत्याद्यविाय यथेष्टचेष्टा–
भचरन्ति यत्साऽग्निबलस्य शक्तिः।।
तस्मादग्नि पालयेत्सर्वयत्नै–
स्तस्मिन्नष्टे याति ना नाशमेव।
दोषैर्ग्रसते ग्रस्यते रोगसगंघै–
र्युक्ते तु स्याननीरूजो दीर्घजीवी।।

अर्थ : यह आहार प्रकृति (स्वभाव) से विरूद्ध है, यह आहार संयोग से विरूद्ध है, यह संस्कार से विरूद्ध है, यह काल विरूद्ध है, यह देश विरूद्ध है, यह मात्रा विरूद्ध है, यह पात्र विरूद्ध है इत्यादि बातों का विचार किये बिना ही आहार करते हुए भी अपनी इच्छा के अनुसार चेष्टा करते हैं अर्थात् जीवित तथा निरोग रहते हैं। वह अग्नि बल की विशेषत है। अतः सभी प्रकार के उपायों से अग्नि की रक्षा करे। अग्नि के नष्ट हो जाने से मनुष्य नष्ट हो जाता है। दोषों के प्रकोप होने से मनुष्य रोग समूहों में ग्रसित हो जाता है। अग्नि के उपयुक्त रहने पर मनुष्य निरोग तथा दीर्घजीवि होता है।

□□□□□

चर्तुथ अध्याय

अथाऽतोमूत्राघातचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः।।

अर्थ : ग्रहणी चिकित्सा व्याख्यान के बाद मूत्राघात चिकित्सा का व्याख्यान करेगें ऐसा आत्रेयादि महर्षियों ने कहा था।

वातज मूत्राघात की सामान्य चिकित्सा–
कृच्छे वातघ्नतैलाक्तमधो नाभेः समीरजे।
सुस्निग्धैः स्वेदयेदगं पिण्डसेकावगाहनैः।।

अर्थ : वात जन्य मूत्राघात में नाभि के नीचे से वात नाशक तैल का अभ्यगं कर स्निगध स्वेद से तथा सेचन एवं अवगाहन से स्वेदन करे।

वातज मूत्राघात में दशमूलादि विविध योग–
दशमूलबलैरण्डयवाऽभीरूपुनर्नवैः।
कुलत्थकोलपतूरवृश्चीवोपलमेदकैः।।
तैलसर्पिर्बराहर्क्षवसाः क्वथितकल्कितैः।
सपच्चलवणाः सिद्धाः पीताः शूलहराः परम्।।
द्रव्याण्येतानि पानान्ने तथा पिण्डोपनाहने।
सहतैलफलैर्युज्ज्यात् साम्लानि स्नेहवन्ति च।।

अर्थ : दशमूल (सरिवन, पिठवन, भटकटैया, वनभण्टा, गोखरू, बेल, गम्भारी, अरणी, सोना पाठा, पाढल), बरियार, एरण्डमूल, यव, शतावरि, पुनर्नवा, कुरथी, वेरपतूर (पतगं), लालपुनर्नवा तथा पाषाण भेद समभाग इन सब के कल्क तथा क्वाथ एवं पाँच लवण मिलाकर विधिवत् सिद्ध तैल घृत पान करने से अच्छी तरह मूत्राघात के शूल का नाश करते हैं। इन्हीं दशमूल द्रव्यों के क्वाथ तथा इन्हीं द्रव्यों के पकाये जल से सिद्ध अन्न पीने तथा खाने में प्रयोग करे और तैल फलों (तिल, बादाम, एरण्ड आदि) में अम्ल तथा स्नेह मिलाकर पिण्ड स्वेदन तथा उपनाह (पुलिटस) करे।

वातजमूत्राघात में मद्य प्रयोग–
सौवर्चलाढयां मदिरां पिबेन्मूत्ररूजापहाम्।

अर्थ : वातज मूत्राघात में सौवर्चल नमक मिलाकर मदिरा पान करे। यह मूत्र कृच्छ की वेदना को शान्त करती है।

पित्तज मूत्राघात में विविधयोग–

पैत्ते युज्जीत शिशिरं सेकेलेपावगाहनम्।।
पिबेद्वरी गोक्षुरकं विदारीं सकसेरूकाम्।
तृणाख्यं पच्चमूलं च पाकं समधुशर्करम्।।
वृषकं त्रपुसैर्वारु लट्वाबीजानि कुगंकुमम्।
द्राक्षाऽम्भोभिः पिबन् सर्वान् मूत्राघातानपोहति।।
एवरुबीजयष्टयाह्वदार्वीर्वा तण्डुलाम्बुना।
तोयेन कल्कं द्राक्षायाः प्रिबेत्पर्युशितेन वा।।

अर्थ : पित्तज मूत्राघात में शीतल, सेकालेप तथा अवगाहन का प्रयोग करे और शतावर, गोखरू, विदारीकन्द, कसेरू, तथा तृण पच्चमूल का क्वाथ मधु तथा शक्कर मिलाकर पान करे। अड़ूसा का पन्ना, त्रपुष (खीरा बीज) ककड़ी बीज, वर्रे का बीज तथा नागकेशर इन सब के चूर्ण (तीन ग्राम) अङगुर के रस के साथ पीने से सभी प्रकार के मूत्राघात को दूर करता है। ककड़ी का बीज, मुलेठी तथा दारू हल्दी समभाग इन सब के चूर्ण को चावल के धोवन के साथ तथा मुनक्का के कल्क को जल के साथ या वासी जल के साथ पान करें।

कफज मूत्राघात में विविध योग–

कफजे वमनं स्वेदं तीक्ष्णोष्णकटुभोजनम्।
यवानां विकृतीः क्षारं कालशेयं च भीलयेत्।।
पिबेन्मद्येन सूक्ष्मैलां धात्रीफलरसेन वा।
सारसास्थिश्वदंष्टैलाव्योषं वा मधुमूत्रवत्।।
स्वरसं कण्टकार्या वा पाययेन्माक्षिकान्वितम्।
शितिवारकबीजं वा तक्रेण भलेक्ष्णचूर्णितम्।।
धव–सप्ताह्न–कुटजं गुडूचीचतुरगंगुलम्।
कटुकैलाकरज्जं च पाक्यं समधुसाधितम्।।
तैर्वापेयां प्रवालं वा चूर्णितं तण्डुलाम्बुना।
सतैलं पाटलाक्षारं सप्तकृत्वोऽथवा सुतम्।।
पाटलीयावशूकाभ्यां पारिभद्रतिलादपि।
क्षारोदकेन मदिरां त्वगेलोषकसयुताम्।।
पिबेद्गुडोपदंशान्वा लिहयादेतान् पृथक् पृथक्

अर्थ : कफज मूत्राघात में वमन, स्वेदन तथा तीक्ष्ण, उष्ण एवं कदु भोजन करें। यव की रोटी तथा दरिया, क्षार (यवक्षार) तथा कालसेय (मद्य) सेवन करे। छोटी इलायची का चूर्ण मद्य के साथ या आँवला के रस के साथ भक्षण करे गोखरू, इलायची तथा व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) के चूर्ण को मधु तथा गोमूत्र मिलाकर सेवन करे। अथवा भटकय्टैया का स्वरस मधु मिलाकर पान कराये। अथवा शितिवार (सिरियारी) के बीज का महीन चूर्ण मट्ठा के साथ

खायें। अथवा धाय, सप्त पर्ण, केरैया, गुडूची, अमलतास, कुटुकी, इलायची तथा करंज्ज समभाग इन सब का क्वाथ मधु मिलाकर पान करे या इन द्रव्यों के पकाये जल से सिद्ध पेया सेवन करे। अथवा प्रवाल (प्रवाल पिष्टी) का चूर्ण चावल के जल के साथ सेवन करे अथवा पाटला का क्षार सात बार छानकर बनाया हुआ तेल मिलाकर पान करे अथवा पाटला का क्षार, यवक्षार, फरहद क्षार तथा तिल का क्षार जल में घोलकर मदिरा तथा दालचीनी, इलायची एवं मरिच का चूर्ण मिलाकर पान करे अथवा पूर्वोक्त क्षारों को अलग–अलग गुड़ में मिलाकर चाटें।

सन्निपातिक मूत्राघात की चिकित्सा संकेत–

सन्निपातात्मके सर्व यथावस्थमिदं हितम्।।
अश्मन्यथ चिरोत्थाने वातबस्त्यादिकेषु च।

अर्थ : सान्निपातिक मूत्राघात में पूर्वोक्त चिकित्सा दोषादि की अवस्थानुसार करें। थोडत्रे समय के उत्पन्न पथरी रोग में तथा वात एवं बस्ति आदि मूत्राघातों में भी पूर्वोक्त चिकित्सा करें।

अश्मरी रोग की भयंकरता तथा चिकित्सा सूत्र–

अश्मरी दारूणो व्याधिरन्तकप्रतिमो मतः।।
तरूणो भेषजैः साध्यः प्रवृद्धश्छेदमहति।
तस्य पूर्वेशु रूपेषु स्नेहादिक्रम इष्यते।।

अर्थ : अश्मरी (पथरी) रोग भयंकर रोग है और वह मृत्यु के समान कहा गया है। जब तक यह तरूण (नवीन) रहता है तब तक औषधों के सेवन करने से साध्य होता है और बढ़ने पर शस्त्रकर्म के योग्य हो जाता है। इस अश्मरी के पूर्व रूपों के होने पर स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचनादि संशोधन क्रम अभीष्ट है।

वातज–अश्मरी की चिकित्सा–

पाषाणभेदो वसुको वशिरोऽश्मन्तको वरी।
कपोतवगंकातिबलामल्लूकोशीरकच्छकम्।।
वृक्षादनी शाकफलं व्याघ्री गुण्ठत्रिकण्टकम्।
यवाः कुलत्थाः कोलानि वरूणः कतकात्फलम्।।
ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्वाथे शृतं घृतम्।
भिनत्ति वातसम्भूतां तत्पीतं शीघ्रमश्मरीम्।।

अर्थ : पाषाण भेद, वसुक (ईश्वर मल्लिका), वशिर (समुद्र नमक), अश्मन्तक (मालुकपर्ण), शतावरी, कपोत वगां (ब्राह्मी), अतिबला, भल्लूक (सोना पाठा), खस, सुगन्धि तृण, वृक्षादनी (वन्दाल), शाकफल (सागवान का फल), कण्टकारी, गुण्ठ, गोखरू, यव, कुलथी, बैर, वरूण तथा कतक फल (रीठा) समभाग इन

सब का क्वाथ तथा ऊषकारिगण के कल्क के साथ विधिवत् घृत सिद्ध करें। यह घृत पान करने से वातजन्य अश्मरी का भेदन करता है।

अश्मरी नाशक कल्क–

गन्धर्वहस्तबृहतीव्याघ्रीगोक्षुरकेक्षुरात्।
मूलक्लकं पिबेद्दध्ना मधुरेणाऽश्मभेदनम्।।

अर्थ : एरण्ड मूल की छाल, वनभण्टा, कण्टकारी, गोखरू तथा तालमखानामूल समभाग इन सब का कल्क मीठे दही के साथ पान करें। यह पथरी रोग को भेदन करता है।

पित्तजाश्मरी की चिकित्सा–

कुशः काशः भारो गुण्ठ इत्कटो मोरटोऽश्मभित्।
दर्भो विदारी वाराही शालिमूलं त्रिकण्टकः।।
भल्लूकः पाटली पाठा पत्तूरः सकुरण्टकः।
पुननवा शिरीषश्च तेषां क्वाथे पचेद् घृतम्।
पिष्टेन त्रपुसादीनां बीजेनैन्दीवरेण वा।
मधुकेन शिलाजेन तत्पित्ताश्मरिभेदनम्।।

अर्थ : कुश की जड़, कास, शर, गुण्ठ, इत्कट, गन्ना की जड़, पाषाण भेद, डाभ की जड़, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, धान की जड़, गोखरू, भल्लूक (सोना पाठा), पाटला, पाठा, पत्तूर (पतंग), कुरण्टक (पीलावासा), पुनर्नवा तथा सिरस समभाग इन सब के क्वाथ तथा त्रपुसादिगण के बीज के कल्क अथवा कमलगट्टा, मुलेठी तथा शिलाजीत के कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध घृत पित्तज अश्मरी का भेदन करता है।

कफजाश्मरी की चिकित्सा–

वरूणादिसमीरघ्नौ गणावेला हरेणुका।
गुग्गुलुर्मरिचं कुष्ठं चित्रकः ससुराह्वयः।।
तैः कल्कितैः कृतावापमूषकादिगणेन च।
भिनत्ति कफजामाशु साधितं घृतमश्मरीम्।।

अर्थ : वरूणादिगण, वातनाशक वीरतरादिगण तथा विदार्य्यादिगण, इलायची, रेणुकाबीज, गुग्गुल, मरिच, कूट, चित्रक, देवदारू समभाग इन सब के कल्क तथा ऊषकादिगण के कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध घृत कफज अश्मरी को शीघ्र ही भेदन करता है।

अश्मरी की सामान्य चिकित्सा–

क्षारक्षीरयवाग्वादि द्रव्यैः स्वैः स्वैश्च कल्पयेत्।

अर्थ : पूर्वोक्त वातादि अश्मरियों के लिए बताये गये द्रव्यों के योग से सिद्ध क्षार, क्षीर तथा यवागू, पेया आदि वातजादि अश्मरियों में हितकर हैं।

शर्करा पातन चिकित्सा–

पिचुकगकोल्लकतकशाकेन्दीवरजैः फलैः।।
पीतमुष्णाम्बु सगुडं शर्करापातनं परम्।

अर्थ : पिचु (नीम), केला, अंकोल फल, रीठा का फल, सागवान का फल तथा कमलगट्टा समभाग इन सब का चूर्ण गुड़ मिलाकर थोड़ा गरम जल से पान करने पर शर्करा को अच्छीतरह निकाल देता है।

शर्करा पातन की दूसरी चिकित्सा–

क्रौच्चोष्टरासभास्थीनि श्वदंष्ट्रा तालपत्रिका।
अजमोदा कदम्बस्य मूलं बिल्वस्य चौषधम्।
पीतानि शर्करां भिन्द्युः सुरयोश्णोदकेन वा।।

अर्थ : गोखरू, मुसली, अजमोदा, कदम्ब की जड़, बेल की जड़ तथा सोंठ समभाग इन सब के चूर्ण को मद्य तथा उष्ण जल के साथ पीन से शर्करा का भेदन करता है।

अश्मरी पातन के लिए गोखरू बीज का प्रयोग–

नृत्यकुण्डलबीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम्।
अविक्षीरेण सप्ताहं पीतमश्मरिपातनम्।।

अर्थ : गोखरू के बीजों का चूर्ण मधु मिलाकर भेड़ के दूध के साथ एक सप्ताह तक पीने से अश्मरी को गिरा देता है।

अश्मरी पातनार्थ सहिजन मूल का प्रयोग–

क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थः कदूष्णोऽश्मरिपातनम्।

अर्थ : सहिजन की जड़ का क्वाथ थोड़ा गरम जल के साथ पीने से अश्मरी को गिरा देता है।

शर्करा तथा अश्मरी में तिलादि का क्षार–

तिलापामार्गकदलीपलाशयवसम्भवः।।
क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करास्वश्मरीषु च।

अर्थ : तिल, अपामार्ग, केला, पलाश तथा यव इन सब का क्षार भेड़ के मूत्र के साथ शर्करा तथा अश्मरी रोग में पान करें।

शर्करा तथा अश्मरी में विविध योग–

कपोतवगकामूलं वा पिबेदेकं सुरादिभिः।।
तत्सिद्धं वा पिबेत्क्षीरं वेदनाभिरूपद्रुतः।
हरीतक्यस्थिसिद्धं वा साधितं वा पुनर्नवैः।।
क्षीरान्नभुग् बर्हिशिखामूलं वा तण्डुलाम्बुना।
मूत्राघातेशु विभजेदतः शेषेष्वपि क्रियाम्।।

अर्थ : कपोतवंडा (ब्राह्मीमूल) या केवल ब्राह्मी मद्य आदि के साथ पान करें अथवा

ब्राह्मी के साथ सिद्ध दूध अश्मरी की वेदना से पीड़ित व्यक्ति पान करें। अथवा हरीतक्यादिगण (त्रिफला) अथवा पुनर्नवा के कल्क से सिद्ध दूध पान करें अथवा मोरशिखा की जड़ का चूर्ण चावल के धोवन के साथ पान करें और दधूभात खाय। शेष मूत्राघात आदि में पूर्वोक्त चिकित्सा को विभाजन कर प्रयोग करें।

मूत्राघात में विविध प्रयोग–

बृहत्यादिगणे सिद्धं द्विगुणीकृतगोक्षुरे।
तोयं पयो वा सर्पिर्वा सर्वमूत्रविकारजित्।।
देवदारू घनं मूर्वा यष्टीमधु हरीतकीम्।
मुत्राघातेषु सर्वेषु सुराक्षीरजलैः पिबेत्।।
रसं वा धन्वयासस्य कशायं ककुभस्य वा।
सुखाम्भसा वा त्रिफलां पिष्टां सैन्धवसंयुताम्।।
व्याघ्रीगोक्षुरकक्वाथे यवागूं वा सफणिताम्।
क्वाथे वीरतरादेर्वा ताम्रचूडरसेऽपि वा।।
अद्याद्वीरतराद्येन भावितं वा शिलाजतु।

अर्थ : बृहत्यादिगण के द्रव्य तथा दुगुना गोखरू के साथ विधिवत् पकाया जल, दूध या घृत सभी प्रकार के मूत्र विकार को दूर करता है। देवदारू, नागरमोथा, मूर्वा, मुलेठी तथा हरीतकी समभाग इन सब का चूर्ण मद्य, दूध या जल के साथ सभी प्रकार के मूत्राघातों में पान करें। अथवा यवासा का रस या अर्जुन का कषाय या थोडा गरम जल से त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) को पीसकर तथा सेन्धा नमक मिलाकर मूत्रघात में पान करे। अथवा कण्टकारी तथा गोखरू के पकाये जल से सिद्ध यवागू को राब मिलाकर पान करे। अथवा वीरतरादिगण के क्वाथ में अथवा यवागू में राव मिलाकर मूत्राघात में पान करे। अथवा वीरतरादिगण के रस से भावित शिलाजीत भक्षण करे।

अश्मरी पातन का उपाय–

मद्यं वा निगदं पीत्वारथेनाश्वेन वा व्रजेत्।।
शीघ्रवेगेन सगंक्षोमात्तथाऽस्य च्यवतेऽश्मरी।

अर्थ : मद्य या निगद नामक मद्य पीकर रथ या घोड़े की सवारीसे चले। इस प्रकार शीघ्र वेग के कारण क्षोम (हलचल) से रोगी की अश्मरी गिर जाती है।

शुक्राश्मरी में वीरतरादि गण आदि का संकेत–

सर्वथा चोपयोक्तव्यो वर्गो वीरतरादिकः।।
रेकार्थं तैल्वकं सर्पिर्वस्तिकर्म च शीलयेत्।
विशेषादुत्तरान् बस्तीन् शुक्राश्मर्या च शोधिते।।

अर्थ : शुक्राश्मरी में हमेशा वीरतरादि गण का प्रयोग करना चाहिए। विरेचन के लिए तैल्वक घृत का प्रयोग करे तथा वस्ति कर्म करे। विशेष कर शुक्राश्मरी में

वमन–विरेचनादि से संशोधन होने पर उत्तर वस्ति का प्रयोग करे।

अश्मरी में शस्त्र कर्म–

सिद्धैरुपक्रमैरेभिर्न चेच्छान्तिस्तदा भिषक्।।
इति राजानमापृच्छय शस्त्रं साध्ववचारयेत्।
अक्रियायांध्रुवो मृत्युः क्रियायां सशयो भवेत्।।
निश्चितस्याऽपि वैद्यस्य, बहुशः सिद्धकर्मणः।

अर्थ : पूर्वोक्त सिद्ध उपक्रमों से यदि अश्मरी रोग में शान्ति न हो अर्थात् अश्मरी टूट टूट कर न गिरे तब चिकित्सक राजा से पूछकर अच्छी तरह शस्त्र कर्म करे। शस्त्र कर्म न करने पर मृत्यु निश्चित है और शस्त्र कर्म करने पर संशय रहता है। सिद्ध कर्म वैद्य के अनेक वार शस्त्र कर्म करने पर भी संशय रहता है।

उपक्रममाह–

वस्तिगत अश्मरी में भास्त्र कर्म विधि–

अथाऽऽतुरमुपस्निग्धं शुद्धमीषच्च कर्शितम्।।
अभ्यक्तस्विन्नवपुषमभुक्तं कृतमडंलम्।
आजानुफलकस्थस्य नरस्यागंके व्यपाश्रितम्।।
पूर्वेण कायेनोतानं निषण्णं वस्त्रचुम्मले।
ततोऽस्याकुञ्चिते जानुकूर्परे वाससा दृढम्।।
सहाश्रयमनुष्येण बद्धस्याश्वासितस्य च।
नाभेः समन्तादभयज्यादधस्तस्याश्च वामतः।।
मृदित्वा मुष्टिनाऽक्रामेद् यावदश्मर्यधोगता।
तैलाक्ते वर्धितनखं तर्जनीमध्यमे ततः।।
अदक्षिणे गुदेऽगगुल्यौ प्रणिधायाऽनुसेवनीम्।
आसाद्य वलयं ताभ्यामश्मरी गुदमेढयोः।।
कृत्वान्तरे तथा बस्ति निर्वलीकमनायतम्।
उत्पीडयेदगगुलिभ्यां यावद्ग्रन्थिरिवोन्नतम्।।
शल्यं स्यात्सेवनीं मुक्त्वा यवमात्रेण पाटयेत्।
अश्ममानेन न यथा भिद्यते सा तथा हरेत्।।
समग्रं सपवक्त्रेण स्त्रोणां बस्तिस्तु पार्श्वगः।
गर्भागशयाश्रयस्तासां शस्त्रमुत्सगंवत्ततः।।
न्यसेदतोऽन्यथ्ज्ञा ह्यासां मूत्रस्रावा व्रणो भवेत्।
मूत्रप्रसेकक्षणनान्नरस्याऽप्यापि चैकधा।।
बस्तिभेदोऽश्मरीहेतुः सिद्धिं याति न तु द्विधा।

अर्थ : अश्मरी रोग में शस्त्र कर्म करने का निश्चय हो जाने पर रोगी का विधिवत् स्नेहन तथा संशोधन करने से थोड़ा कृश हो जाने पर सम्पूर्ण शरीर

में अभ्यगं तथा स्वेदन करे। अभ्यगं तथा स्वेदन करने के बाद स्वस्ति वाचन, बलि आदि देकर बिना खाये हुए रोगी को जानु पर्यन्त उच्चातक्ख्त (मेज) पर स्थित मनुष्य के गोद में पूर्व शरीर देकर उतान लिटाकर उसके कटिभाग के नीचे कपड़ा की गद्दी लगाकर तथा कटिभाग को ऊँचा कर रोगी के जानु एवं कोहनी को संकुचित कर लम्बे वस्त्र से आश्रय पुरूष के शरीर के साथ अच्छी तरह बाँध दे और आश्वासन देकर नाभि के सभी ओर अभ्यगं कर वार्ड और मुष्ठि द्वारा बल पूर्वत तबतक मर्दन करे जब तक अश्मरी अधोभाग में न आ जाय। इसके बाद कटे हुए नख में तैल लगाकर वायें हाथ की तर्जनी एवं मध्यमा अंगुली को गुदा के भीतर से वस्ति के अनुकूल डालकर बल तथा प्रयत्न से अश्मरी को गुदा एवं मेहन के मध्य में ले आकर वस्ति को इतना दबाये जिससे उसमें वली (सिकुड़न) न रह जाय और अधिक तन भी न जाय अर्थात सम हो जाय और अश्मरी ग्रन्थि के समान अंगुलियों के दबाने से उठ जाय। पुनः सेवनी से थोड़ी दूर (जव भर दूर) इतना पाटन करे जितनी बड़ी हो। यह पाटन सेवनी के दक्षिण और अथवा वाम ओर करे। यह सावधानी रक्खे कि पाटन करते समय शस्त्र द्वारा अश्मरी टूट–फूट न जाय उसी समय तत्काल सर्प मुख यन्त्र द्वारा सम्पूर्ण अश्मरी को निकाल ले। यदि अश्मरी का चूरा भीतर रह जाता है तो पुनः बढ़कर अश्मरी का रूप धारण कर लेला है। नारियों की वसित के पास ही गर्भाशय रहता है अतः उसको निकलने के लिए उत्सगवान् शस्त्र द्वारा पाटन करे। अन्यथा स्त्रियों के वस्ति से मूत्राशय में मूत्रस्रावी व्रण हो जाता है। इसी प्रकार मूत्राशय में मूत्रस्रावी व्रण हो जाता है। इसी प्रकार मूत्राशय में क्षत हो जाने से नर का भी मूत्रस्रावी व्रण हो जात है। अश्मरी निकालने के लिए वस्ति का भेदन करने में एक ओर जो व्रण किया जाता है उसका रोपण हो जाता है। किन्तु अन्यान्य आघात आदि से वस्ति फट जाती है या दो ओर से व्रण हो जाते हैं तो उसका रोपण नहीं होता है।

शस्त्र कर्म के बाद का उपचार–

विशलयमुष्णपानीयद्रोण्यां तमवगाहयेत्।।
तथा न पूर्यतेऽस्रेण बस्तिः पूर्णे तु पीडयेत्।
मेढान्तः क्षीररिवृक्षाम्बु मूत्रसंशुद्धये ततः।।
कुर्याद् गुडस्य सौहित्यं मध्वाज्याक्तव्रणः पिबेत्।
द्वौ काली सघृतां कोष्णां यवागूं मूत्रशोधनैः।।
त्र्यहं दशाहं पयसा गुडाढयेनाऽल्पमोदनम्।
भुज्जीतोर्ध्वं फलाम्लैश्च रसैजडिलचारिणाम्।।

अर्थ : पूर्वोक्त प्रकार से अश्मरी को निकाल कर रोगी को थोड़ा उष्ण जल

की द्रोणी में बैठा दे तथा अवगाहन कराये। ऐसा करने से वस्ति में रक्त नहीं भरता। यदि रक्त भर जाय तो वट आदि क्षीरी वृक्षों के कषाय की वस्ति मूत्र मार्ग से दे। इसके बाद मूत्र शोधन के लिए गुड़ को तृप्ति होने तक खिलाये और पुन पूर्वव्रण पर मधु तथा घृत का लेप करे। भोजन में दोनों समय मूत्र शोधक गोखरू आदि द्रव्यों के पकाये जल से बनायी गयी थोड़ा गरम यवागू तीन दिन तक खिलाये। इसके बाद पुनः गुड़ मिश्रित दूध के साथ थोड़ा–थोड़ा भात दस दिन पर्यन्त भोजन कराये। इसके बाद अनार आदि फलों से अम्ल रस के साथ उचित मात्रा पूर्वक भोजन कराये।

अश्मरी पाटन जन्य व्रणोपचार–

क्षीरिवृक्षकषायेण व्रणं प्रक्षाल्य लेपयेत्।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठायष्टयाह्नयनौषधैः।।
व्रणाभ्यगं पचेत्तैलमेभिरेव निशान्वितैः।

अर्थ : क्षीरि वृक्षों के कषाय से व्रण का प्रक्षालन कर प्रपौण्डरीक, मजीठ, मुलेठी तथा पठानीलोध समभाग इन सब का लेप बनाकर लगाये ओर इन्हीं द्रव्यों के कषाय तथा कल्क में हलदी मिलाकर विधिवत् सिद्ध तैल का व्रण के ऊपर लेप लगाये।

शस्त्रकर्म के पश्चात् कर्म–

दशाहं स्वेदयेच्चैनं स्वमार्गं सप्तरात्रतः।।
मूत्रे त्वगच्छति दहेदशमरीव्रणमग्निना।
स्वमार्गप्रतिपत्तौ तु स्वादुप्रायैरूपाचरेत्।।
तं बसितभिः न चारोहेद्वर्ष रूढव्रणोऽपि सः।
नग–नागाऽश्व–वृक्ष–स्त्री–रथान् नाप्सु प्लवेत च।।

अर्थ : वस्ति मार्ग को दस दिन तक स्नेहन–स्वेदन करे। स्वेदन के बाद लगभग सात दिन तक मूत्र अपने मार्ग से जाने लगे तो मधुर तथा कषाय रस वाली उत्तर वस्तियों, निरूहण तथा अनुवासन वस्तियों द्वारा उपचार करे। इस प्रकार चिकित्सा करने पर व्रण का रोपण हो जाता है। व्रण के रोपण हो जाने पर भी एक वर्ष पर्यन्त पर्वत, हाथी, घोड़ा, वृक्ष तथा रथ पर न चढ़े और मैथुन न करे एवं जल में न तैरे।

शस्त्रकर्म में सावधानी–

मूत्रशुक्रवहौ बस्तिवृषणौ सेवनीं गुदम्।
मूत्रप्रसेकं योनिं च शस्त्रेणाऽष्टौ विवर्जयेत्।।

अर्थ : शस्त्र कर्म करते समय मूत्रवाही तथा शुक्रवाही स्रोत, वस्ति तथा वृषण, सेविनी, गुदा, मूत्रप्रसेक (गविनी) तथा योनि इन आठ अंगों को क्षत नहीं होने देना चाहिए।

□□□□□

पंचम अध्याय

अथाऽतः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः।।

अर्थ : मूत्राघात चिकित्सा व्याख्यान के बाद प्रमेह चिकित्सा व्याख्यान करेगें ऐसा आत्रेयादि महर्षियों ने कहा था।

प्रमेह की सामान्य चिकित्सा—

मेहिनों बलिनः कुर्यादादौ वमनरेचने।
स्निग्धस्य सर्षपाऽरिश्ट—कुसुम्भाऽक्ष—करज्जकैः।।
तैलैस्त्रिकण्टकाद्यन यथास्वं साधितेन वा।
स्नेहेन मुस्तदेवाह्व—नागरप्रतिवापवत्।।
सुरसादिकषायेण दद्यादास्थापनं ततः।
न्यग्रोधादेस्तु पित्तार्त रसैः शुद्धं च तर्पयेत्।।
मूत्रग्रहरूजागुल्म—क्षयाद्यास्त्वपतर्पणात्।
ततोऽनुबन्धरक्षार्थ शमनानि प्रयोजयेत्।।
असंशोध्यस्य तान्येव सर्वमेहेषु पाययेत्

अर्थ : बलवान् प्रमेह के रोगी को सरसों के तैल, नीम के तैल, दन्ती के तैल, बहेड़ा के तैल या करंज्ज के तैल अथवा त्रिकण्टकादि द्रव्यों से सिद्ध दोषानुसार अन्य द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध तैलों से अभ्यगं द्वारा स्निग्ध कर पहले वमन तथा विरेचन कराये। इसके बाद नागरमोथा, देवदारू तथा सोंठ समभाग इन सब के कल्क के साथ सुरसादिगण के क्वाथ में विधिवत् पकाये स्नेह (धृत—तैल) से आस्थापन वस्ति का प्रयोग करे। पित्ताधिक्य प्रमेह के रोगी को न्यग्रोधादिगण के द्रव्यों से सिद्ध स्नेह से आस्थापन वस्ति का प्रयोग करे। इस प्रकार शोधन हो जाने पर तर्पण करे। क्योंकि तर्पण न करने से मूलग्रह (मूत्राघात, मूत्र कृच्छ) की पीड़ा, गुल्मरोग तथा क्षय आदि रोग होते हैं। इसके बाद प्रमेह के अनुबन्ध की रक्षा करने के लिए शामक योगों का प्रयोग करे। जो दुर्बल रोगी वमन विरेचन के अयोग्य हों उनके लिए विना संशोधन किये ही सभी प्रकार के प्रमेहों के शामक योगों का प्रयोग कराये।

प्रमेह में सामान्य भामनयोग—

धात्रीरसप्लुतां प्राहणे हरिद्रां माक्षिकान्विताम्।।
दार्वीसुराहवत्रिफला—मुस्ता वा क्वथिता जले।
चित्रकत्रिफलादार्वीकलिगनू वा समाक्षिकान्।

मधुयुक्तं गुडूच्या वा रसमामलकस्य वा।।

अर्थ : प्रमेह रोग में शमनार्थ हलदी के चूर्ण को आँवला के रस में भिगोकर तथा शहद मिलाकर प्रातः भक्षण कराये अथवा दारू हलदी, देवदारू, त्रिफला तथा नागरमोथा, समभाग इन सब का क्वाथ पान कराये। अथवा चित्रक, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), दारूहलदी तथा इन्द्रजव समभाग इन सब का क्वाथ मधु मिलाकर पान कराये। या गुडूची का रस मधु मिलाकर अथवा आँवला का रस पान कराये।

कफज प्रमेह में रोध्रादि तीन कषाय–

रोध्राभयातोयदकट्फलानां
पाठाविडगर्जुनधान्यकानाम्।
गायत्रिदार्वीकृमिह्मद्वचानां
कफे त्रयः क्षौद्रयुताः कषायाः।।

अर्थ : कफज प्रमेह में (1) लोध, हर्रे, नागरमोथा तथा कायफर, (2) पाठा, विडंग, अर्जुन तथा धनियां, (3) खैरसार, दारू हलदी, वाय विडंग तथा वच समभाग इन द्रव्यों का तीन कषाय शहद के साथ पिलाये।

पित्तज प्रमेह में उशीरादि तीन कषाय–

उशीररोध्रार्जुनचन्दनानां
पटोलनिम्बामलकामृतानाम्।
रोध्राम्बुकालीयकधातकीनां
पित्ते त्रयः क्षौद्रयुताः कषायाः।।

अर्थ : पित्तज प्रमेह में (1) खस, लोध, अर्जुन तथा चन्दन, (2) परवल का पत्ता, नीम की छाल, आँवला तथा गिलोय, (3) लोध, सुगन्ध वाला, काला अगर तथा धाय का फूल, समभाग इन द्रव्यों का तीन कषाय शहद मिलाकर पान कराये।

कफ–पित्तज प्रमेह में अन्न–

यथास्वमेभिः पानान्नं यवगोधूमभावनाम्।

अर्थ : पूर्वोक्त प्रमेह में पूर्व कथित दोषानुसार कषाय द्रव्यों के साथ अन्न–पान का निर्माण कर सेवन कराये और उन्हीं द्रव्यों के कषाय से जव तथा गेहूँ को भावित कर उसका भोजन बनाकर खिलाये।

वातोल्वण कफ–पित्तज प्रमेह में स्नेह पान–

वातोल्बणेषु स्नेहांश्च प्रमेहेपु प्रकल्पयेत्।।

अर्थ : वात प्रधान कफज तथा पित्तज प्रमेहों में दोषानुसार पूर्वोक्त कफज तथा पित्तज में कहे गये कषाय द्रव्यों से विधिवत् घृत निर्माण कर पान कराये।

प्रमेहों में आहार द्रव्य–

अपूपसक्तुवाअयादिर्यवानां विकृतिर्हिता।

गवाश्वगुदशुक्तानामथवा वेणुजन्मनाम्।।
तृणधान्यानि मृद्गाद्याः शालिजीर्णः सषष्टिकः।
श्रीकुक्कुटोऽम्लः खलकसितलसर्षपकिट्टजः।।
कपित्थं तिन्दुकं जम्बुस्तत्कृता रागखाण्डवाः।
तिक्तं शाकं मधु श्रेष्ठा भक्ष्याः शुष्काः ससक्तवः।।
धन्वमांसानि शूल्यानि परिशुष्कान्ययसकृतिः।
मध्वरिष्टासवा जीर्णाः सीधुः पक्वरसोद्भवः।।
तथाऽसनादिसाराम्बु दर्भाम्भो माक्षिकोदकम्।
वासितेशु वराक्वाथे शर्वरी शोषितेष्वहः।।
यवेषु सुकृतान्सक्तून् सक्षौद्रान् सीधुना पिबेत्।

अर्थ : सभी प्रकार के प्रमेहों में यव का पूवा, सतू तथा वाय्य (भूजा) सेवन करना हितकर है। वांस के यवका अपूप (पूआ) सतू तथा भूजा हितकर है। तृण धान्य (सांवा, कोदो, टांगुनकदन्न), मूँग आदि (मूँग, उड़द, कुरथी) पुराना जड़हन धान का चावल, सांठी का चावल इन सब का भात, दाल, तिल तथा सरसों की खली का श्रीकुक्कुट नामक खलक (तिलकुट) कैथ, तेंदू तथा जामुन का राग खाड़व, तिक्तरस प्रधान शाक, मधु, त्रिफला, शुष्कभक्ष्य (भूजा), लौह भस्म, पुराना मधु, अरिष्ट तथा आसव, पके हुए रस से बने सीधु, असन आदि वृक्ष के सार का जल, डाभ का पकाया जल, मधु का शर्बत, त्रिफला के जल में रात भर के भिंगोये तथा दिनभर का सुखाया यव के सत्तू को मधु मिलाकर सीधु के साथ पान करे।

विश्लेषण : सभी प्रमेह में कफ की प्रधानता होती है। पित्तज तथा वातज प्रमेहों में भी कफ का अनुबन्ध होता है। अतः सभी प्रमेहों में रूक्ष वस्तुओं का प्रयोग खाने के लिए कहना चाहिए यद्यपि इन रूक्ष द्रव्यों में बल वर्द्धक तत्त्व नही होते है। फिर भी कफ का शोषण तथा प्राण रक्षा प्रमेह नाश के लिए करना चाहिए।

कफ–पित्त प्रमेह में शालादि योग–

शालसप्ताहवकम्पिल्ल–वृक्षकाक्षकपित्थजम्।।
रौहीतकं च कुसुमं मधुनाऽद्यात्सुचूर्णितम्।
कफपित्तप्रमेहेषु पिबेद्धात्रीरसेन वा।।

अर्थ : शाल, सप्तपर्ण, कबीला, वृक्षक (कोरेया), बहेड़ा कैथ तथा रूहेड़ा समभाग इन सब के फूल का चूर्ण कफ–पित्त प्रमेह में शहद के साथ खायें या आँवला के रस के साथ पान करे।

प्रमेहों में घृत–तैल का प्रयोग–

त्रिकण्टकनिशारोध्रसोमवल्कवचाऽर्जुनैः।
पद्मकाश्मन्तकारिष्ट–चन्दनाऽगुरूदीप्यकैः।।

पटोलमुस्तमज्जिष्ठा–माद्रीभल्लातकैः पचेत्।
तैलं वातकफे पित्ते घृतं मिश्रेषु मिश्रकम्।।

अर्थ : गोखरू, हल्दी, लोध, जायफल, वच, अर्जुन, पद्मकाठ अश्मन्तक (कचनार); नीम, चन्दन, अगर, अजवायन, परवल, नागरमोथा, मजीठ, अतीस तथा भल्ला तक समभाग इन सब के कल्क के साथ तैल तथा घृत विधिवत् सिद्ध करे और वात–कफ में तैल तथा पित्त में घृत का प्रयोग करे और सन्निपात प्रमेह में मिश्रक (घृत–तैल) का प्रयोग करें।

धान्वन्तरं घृतम्।

प्रमेहादि में धान्वन्तर घृत–

दशमूलं भाठीं दन्ती सुराहवा द्विपुनर्नवम्।
मूलं सुगर्कयोः पथ्यां भूकदम्बमरूष्करम्।।
करज्जवरूणान्मूलं पिप्पल्याः पौष्करं च यत्।
पृथग् दशपलं प्रस्थान् यवकोलकुलत्थतः।।
त्रीश्चाष्टगुणिते तोये विपचेत्पादवर्तिना।
तेन द्विपिप्पलीचव्यवचानिचुलरोहिशैः।।
त्रिवृदिडगकम्पिल्लभार्गीबिल्वैश्च साधयेत्।
प्रस्थं घृताज्जयेत्सर्वास्तन्मेहान् पिटिका विषम्।।
पाण्डुविद्रधिगुल्मार्शःशोफशोषगरोदरम्।
श्वास कासं वमिं वृद्धि प्लीहानं वातशोणितम्।।
कुष्ठोन्मादावपस्मारं धान्वन्तरमिदं घृतम्।

अर्थ : दशमूल (सरिवन, पिठवन, कण्टकारी, वनभण्टा, गोखरू, बेल, गम्भारी, सोना पाठा, अरणी, पाढल), कचूर, दन्तीमूल, देवदारू, श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, सेहुड़ तथा मदार की जड़, हर्रे, गोरखमुडी, भिलावा, करंज्ज तथा वरूण की जड़ें, पिपरामूल, पुष्करमूल, प्रत्येक दस–दस पल (प्रत्येक 500 ग्राम) यव, बैर तथा कुरथी एक–एक प्रस्थ (प्रत्येक एक किलो) इन सब को यव कूटकर अठगुने जल में पकावे। चौथाई शेष रहने पर छान् ले और इसके साथ पीपर, गज पीपर, चव्य, वच, जलवतेस, रोहिषतृण, निशोथ विडंग, कबीला, बभनेठी तथा बेल समभाग इन सब का कल्क मिलाकर घृत एक प्रस्थ (1 किलो) विधिवत् सिद्ध करे। यह घृत सभी प्रकार के प्रमेह, प्रमेह पिडिका, विषविकार, पाण्डुरोग, विद्रधि, गुल्म, अर्शरोग, शोथ, शोषरोग (यक्ष्मा), क्रित्रिम विष, उदर रोग, श्वास, कास, वमन, वृद्धिरोग, प्लीहारोग, वातरक्त, कुष्ठरोग, उन्माद तथा अपस्मार रोग को दूर करता है।

रोध्रासवः।

प्रमेहादि में लोघ्रासव–'

रोध्रमूर्वाशठीवेल्ल–भार्ङीनतनखप्लवान्।।
कलिंगकुष्ठक्रमुकप्रियंगग्वतिविषाऽग्निकान्।
द्वे विशाले चतुजतिं भूनिम्बं कटुरोहिणीम्।।
यवानीं पौष्करं पाठां ग्रन्थिं चव्यं फलत्रयम्।
कर्षांशमम्बुकलशे पादशेषे सुते हिमे।।
द्वौ प्रस्थौ माक्षिकात्क्षिप्त्वा रक्षेत्पक्षमुपेक्षया।
रोध्रासवोऽयं मेहार्शः–श्वित्रकुश्ठारुचिक्रिमीन्।।
पाण्डुत्वं ग्रहणीदोषं स्थूलतां नियच्छति।

अर्थ : लोध, मूर्वा, कचूर, विडंग, बभनेठी, तगर, नख (सुगन्धिक द्रव्य), नागरमोथा, इन्द्रजव, कूट, सुपारी, फूल प्रियंगू, अतीस, चित्रक, इन्द्रायण, बड़ी इन्द्रायण, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर), चिरायता, कुटकी, अजवायन, पुष्करमूल, पाठा, पिपरामूल, चव्य तथा त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) एक–एक कर्ष (प्रत्येक 10 ग्राम) इन सब को जव कूटकर जल एक द्रोण में पकावे। चौथाई शेष रहने पर छान ले। शीतल हो जाने पर मधु 2 प्रस्थ (2 किलो) मिलाकर एक पक्ष (15 दिन) रक्खे। इसके बाद छानकर प्रयोग करे। यह लोध्रासव है। यह प्रमेह, अर्श, श्वेत कुष्ठ रोग, अरूचि, क्रिमिरोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी विकार तथा स्थूलता (मोटापा) को दूर करता है।

अयस्कृतिः।

प्रमेह आदि रोग में अयस्कृति–

साधयेदसनादीनां पलानां विंशतिं पृथक्।।
द्विवहेऽपां क्षिपेत्तत्र पादस्थे द्वे शते गुडात्।
क्षौद्राढकार्धं पलिकं वत्सकादि च कल्कितम्।।
तत्क्षौद्रपिप्पलीचूर्णप्रदिग्धे घृतभाजने।
स्थितं दृढे जतुसृते यवराशौ निधापयेत्।।
खदिरागरतप्तानि बहुशोऽत्र निमज्जयेत्।
तनूनि तीक्ष्णलोहस्य पत्राण्यालोहसगक्षयात्।।
अयस्कृतिः स्थिता पीता पूर्वस्मादधिका गुणैः।

अर्थ : असनादि गण के द्रव्यों को बीस–बीस पल (प्रत्येक एक किलो) लेकर जल दो वह (आठ द्रोण लगभग 96 किलो) में पकावें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और उसमें गुड़ दो सौ पल (2 तुला 10 किलो), शहद आधा आढक (12 किलो) तथा वत्सकादिगण के प्रत्येक द्रव्य एक–एक पल (प्रत्येक 50 ग्राम) का कल्क मिलाकर मधु तथा पीपर के चूर्ण से प्रलिप्त तथा घृत स्निग्ध

ा मजबूत तथा लाक्षारस से पुता हुआ भाण्ड में रखकर जव के ढेर में 15 दिन तक रक्खें। इसके बाद निकालकर उसमें लोहे के सूक्ष्म पत्रों को खैर की लकड़ी के अंगार में तपाकर अनेक बार बुझावें और मुख बन्द कर तब तक रखें जब तक वह गल न जाय। यह अयस्कृति पीने से पूर्वोक्त लोध्रासव के गुणों से अधिक गुण वाली होती है। अर्थात् प्रमेह, अर्श, अस्थि रोगों को नष्ट करती है।

प्रमेह में पथ्य–

रूक्षमुद्वर्तनं गाढं व्यायामो निशि जागरः।।
यच्चाऽन्यच्छ्लेष्ममेदोघ्नं बहिरन्तश्च यद्धितम्।

अर्थ : प्रमेह रोग में अधिक रूप में रूक्ष उवटन (सूखे चूर्ण का मालिस), व्यायाम, रात में जगना इनके अतिरिक्त जो बाहरी तथा भीतरी कफ तथा मेदनाशक उपाय हैं वे हितकर हैं।

प्रमेह आदि रोगों में शिलाजीत का प्रयोग–

सुभावितां सारजलैस्तुलां पीत्वा शिलोद्भवात्।।
साराम्बुनैव भुञ्जानः शालिं जागलजै रसैः।
सर्वानभिभवेन्मेहान् सुबहूपद्रवानपि।।
गण्डमालाऽर्बुदग्रन्थि–स्थौल्यकुष्ठभगन्दरान्।
कृमिश्लीपदशोफांश्च परं चैतद्रसायनम्।।

अर्थ : विजयसार तथा खैर सार आदि सारकाष्ठों के क्वाथ से अच्छी तरह भावित पाँच किलो शिलाजीत विजयसार आदि के ही जल के साथ पानकर जड़हन ध ान का भात खाता हुआ प्रमेह का रोगी अनेक उपद्रव वाले सभी प्रकार के प्रमेहों को जीत लेता है। इनके अतिरिक्त यह रसायन गण्डमाला, अर्बुद, ग्रन्थिरोग, स्थूलता, कुष्ठरोग, भगन्दर, क्रिमिरोग तथा श्लीपद के शोथों को दूर करता है।

साधनहीन प्रमेहों की चिकित्सा–

अधनश्छत्रपादत्ररहितो मुनिवर्तनः।
योजनानां शतं यायात् खनेद्वासलिलाशयान्।।
गोशकृन्मूत्रवृत्तिर्वा गौमिरेव सह व्रजेत्।

अर्थ : असहाय तथा निर्धन प्रमेह का रोगी छाता तथा जूता रहित रहकर मुनि के सामान आहार–विहार करते हुए सौ योजन (400 कोस) तक चले और कुआँ तथा तालाब आदि जलाशय खोदें। अथवा गोबर खाकर तथा गोमूत्र पीकर रहे और गायों के साथ घूमे। अर्थात् गाय चराये।

दुर्बल प्रमेह रोगी की चिकित्सा–

बृंहयेदौषधाहारैरमेदोमूत्रलैः कृशम्।।

अर्थ : दुर्बल प्रमेह के रोगी को बृंहणकारक औषध तथा आहार के द्वारा बृंहण

करें जो औषध तथा आहार मेदा तथा मूत्र को बढ़ाने वाला न हो।

प्रमेह पिडिकाओं की चिकित्सा–

शराविकाद्याः पिटिकाः शोफवत् समुपाचरेत्।
अपक्वा व्रणवत्पक्वाः तासां प्राग्रूप एवं च।।
क्षीरिवृक्षाम्बुपानाय बस्तमूत्रं च शस्यते।
तीक्ष्णं च भाोधनं प्रायो दुर्विरेच्या हि मोहिनः।।
तैलमेलादिना कुर्याद्गणेन व्रणरोपणम्।
उद्वर्तने कषायं तु वर्गेणारग्वधादिना।।
परिषेकोऽसनाद्येन पानान्ने वत्सकादिना।

अर्थ : शराविका आदि प्रमेह पिडिकाओं की चिकित्सा व्रण शोथ की तरह तथा पक्व व्रण की तरह (भेदन, शोधन, रोपण आदि) चिकित्सा करें। प्रमेह पिडिकाओं की पूर्व रूप की अवस्था में क्षीरी वृक्षों का पकाया जल तथा बकरी का मूत्र प्रशस्त होता है। प्रायः प्रमेह के रोगी को विरेचन कठिनाई से होता है अतः तीक्ष्ण द्रव्यों से विरेचन करना चाहिए। एलादि गण के द्रव्यों के कल्क तथा कषाय के साथ तैल सिद्ध करें। यह व्रण को रोपण करने वाला है। आरग्वधादि वर्ग के कषाय का उबटन में प्रयोग करें। असनादि वर्ग के कषाय से परिषेक करें और वत्सकादिगण के पकाये जल से खाने तथा पीने का पदार्थ बनाकर भोजन करें।

प्रमेह में पाठादि चूर्ण तथा नवायस लौह–

पाठाचित्रकशार्ङ्गष्टासारिवाकण्टकारिकाः।।
सप्ताहवं कौटजं मूलं सोमवल्कं नृपद्रुमम्।
सच्चूर्ण्य मधुना लिह्यात्तद्वच्चूर्णं नवायसम्।।

अर्थ : पाठ, चित्रक, भगर्गेष्ठा (मंजीठ), सारिवा, कण्टकारी, सप्तपर्ण, कारैया की जड़, जायफल तथा अमलतास समभाग इन सबका चूर्ण शहद के साथ प्रमेह का रोगी चाटें। उसी प्रकार नवायस लौह मधु के साथ चाटें। त्रिफला, त्रिकटु, नागरमोथा, विडंग तथा चित्रक समभाग लेकर सभी के बराबर लोहभस्म मिलाकर एकत्र मर्दन कर लें यह नवायस लौह है।

मधु मेह में शिलाजीत का प्रयोग–

मधुमेहित्वमापन्नो भिषग्भिः परिवर्जितः।
शिलाजतुतुलामद्यात्प्रमेहार्तः पुनर्नवः।।

अर्थ : जो मधुमेह का रोगी चिकित्सकों के द्वारा असाध्य कह कर त्याग दिया गया हो वह एक तुला (5 किलो) शिलाजीत खाये। इससे वह पुनः युवा सदृश हो जाता हैं।

❑❑❑❑❑

शष्ठम् अध्याय

अथातो विद्रधिवृद्धिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः।।

अर्थ : प्रमेह चिकित्सा व्याख्यान के बाद विद्रधि तथा वृद्धि चिकित्सा का व्याख्यान करेंगे ऐसा आत्रेयादि महर्षियों ने कहा था।

विद्रधि की सामान्य चिकित्सा–

विद्रधिरोगचिकित्सितम्।
विद्रधिं सर्वमेवामं शोफवत् समुपाचरेत्।
प्रततं च हरेद्रक्तं पक्वे तु व्रणवत्क्रिया।।

अर्थ : सभी प्रकार की आम विद्रधियों की शोथ के समान चिकित्सा करें और लगातार रक्तमोक्षण (तुम्बी, जोंक तथा शिरा वेध द्वारा) कराये। पक जाने पर व्रण के समान (भेदन, शोधन तथा रोपण) चिकित्सा करें।

वात विद्रधि की विशेष चिकित्सा–

पच्चमूलजलैधौतं वातिकं लवणोत्तरैः।
भद्रादिवर्गयष्ट्याहव–तिलैरालेपयेद् व्रणम्।।
वैरेचनिकयुक्तेन त्रैवृतेन विशोध्य च।
विदारीवर्गसिद्धेन त्रैवृतेनैव रोपयेत्।।

अर्थ : वातज विद्रधि में पंच्चमूल (वेल, गम्भारी, अरणी, सोनापाठा, पाढ़ल) समभाग इन सब के क्वाथ से प्रक्षालन करें और भद्रादि वर्ग (देवदार्वादि वर्ग) की औषधों मुलेठी तथा तिल इन सब के कल्क में सेन्धानमक मिलाकर लेप लगाये। इसके बाद बेरेचिनिक वर्ग के द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध त्रैवृत घृत से शोधन कर विदारी वर्ग के द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध त्रैवृत घृत से ही रोपण करें।

पित्तज विद्रधि की विशिष्ट चिकित्सा–

क्षालितै क्षीरितोयेन लिम्पेद्यष्टयमृतातिलैः।
पैत्तं घृतेन सिद्धेन मञ्जिष्ठोशीरपद्मेकैः।।
पयस्याद्विनिशाश्रेष्ठा–यष्टीदुग्धश्च रोपयेत्।

अर्थ : पैत्तिक विद्रधि में क्षीरि वृक्ष (न्यग्रोधादि क्षीरिवृक्ष) के क्वाथ से प्रक्षालन कर मुलेठी, गुडूची तथा तिल के कल्क का लेप लगावें। इसके बाद मजीठ, खस, पद्मकाठ, क्षीर विदारी, हल्दी, दारूहल्दी, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) मुलेठी तथा दूध इन सब के साथ विधिवत् सिद्ध घृत से रोपण करें। अथवा न्यग्रोध, पीपर, पाकड़, गूलन, परासपाकड़ इन सब के पत्ते, छाल तथा फल

के साथ विधिवत् सिद्ध घृत से रोपण करे।

कफज विद्रधि की विशिष्ट चिकित्सा–

न्यग्रोधादिप्रवालत्वक्फलैर्वा कफजं पुनः।।
आरग्वधाम्बुना धौतं सक्तुकुम्भनिशातिलैः।
लिम्पेत्कुलत्थिकादन्ती–त्रिवृच्छयामाऽग्नितिल्वकैः।।
ससैन्धवैः सगोमूत्रैस्तैलं कुर्वीत रोपणम्।

अर्थ : कफ जन्य विद्रधि में आरग्वधादिगण के क्वाथ से प्रक्षालन करें और सत्तू, निशोथ, हल्दी तथा तिलों के कल्क का लेप करें। इसके बाद कुरथी, दन्तीमूल, निशोथ, कृष्ण सारिवा, चित्रक, लोध, सेन्धानमक तथा गोमूत्र के साध विधिवत् सिद्ध घृत से रोपण करें।

रक्तज तथा आगन्तुक विद्रधि की विशिष्ट चिकित्सा–

रक्तागन्तूद्भवे कार्या पित्तविद्रधिवत्क्रिया।।

अर्थ : रक्तज तथा आगन्तुक विद्रधि में पित्त विद्रधि की चिकित्सा की तरह चिकित्सा करें।

विश्लेशण : विद्रधि उसे कहते हैं जो पक कर विदीर्ण हो जाता है अथवा पके हुए व्रण शोथ का भेदन करने पर उसे विद्रधि कहते हैं। यह मांसल प्रदेश में लम्बा, ऊँचा पहले शोथ होता है और उसे फटने पर विद्रधि कहते हैं। यह प्रक्षालन लेप से शोधन होता है और सिद्ध घृत आदि से रोपण किया जाता है।

आभ्यन्तरिक अपक्वविद्रधि की चिकित्सा–

वरूणादिगणक्वाथमपक्वेऽभ्यन्तर स्थिते।
ऊषकादिप्रतीवापं पूर्वाहणे विद्रधौ पिबेत्।।
घृतं विरेचनद्रव्यैः सिद्धं ताभ्यां च पाययेत्।
निरूहें स्नेहबस्ति च ताभ्यामेव प्रकल्पयेत्।।
पानभोजनलेपेषु मधुशिग्रुः प्रयोजितः।
दत्तावापो यथादोषमपक्वं हन्ति विद्रधिम्।।

अर्थ : अपक्व आभ्यन्तर स्थित विद्रधि में वरूणादि वर्ग का क्वाथ में ऊषकादि द्रव्यों का प्रक्षेप मिलाकर प्रातःकाल पान करें और विरेचन द्रव्यों से तथा विरूणादिगण एवं ऊषकादिगण के द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध घृत पान कराये। इसके बाद उन्हीं पूर्वोक्त द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध स्नेह (घृत–तैल) से निरूह वस्ति तथा स्नेह वस्ति का प्रयोग करें। उन्हीं पूर्वोक्त द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध घृत में मीठे सहिजन के चूर्ण का प्रक्षेप देकर दोषों के अनुसार पान, भोजन तथा लेप के लिए प्रयोग करें। यह अपक्व विद्रधि को नष्ट करत है।

विद्रधि में त्रायन्त्यादि क्वाथ–

त्रायन्तीत्रिफलानिम्ब–कटुकामधुकं समम्।

त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां चत्वारोंऽशाः पृथक् पृथक्।।
मसूरान्निस्तुषादष्टौ तत्क्वाथः सघृतो जयेत्।
विद्रधीगुल्मवीसर्प–दाहमोहमदज्वरान्।।
तृण्मूच्छाचछर्दिह्नद्रोग–पित्तासृक्कुष्ठकामलाः।

अर्थ : त्रायमाण, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) नीम, कुटकी तथा मुलेठी, समभाग निशोथ तथा पटोलमूल अलग–अलग चार–चार भाग, भूसी रहित मसूर की दाल आठ भाग इन सब के साथ विधिवत् सिद्ध क्वाथ घृत मिलाकर पान करें। यह क्वाथ विद्रधि, गुल्मरोग, वीसर्प, दाह, मोह, मद, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, वमन, हृद्रोग, रक्तपित, कुष्ठ तथा कामलारोग को दूर करता है।

विद्रधि में त्रायमाणादि घृत–

**कुडवं त्रायमाणायाःसाध्यमष्टगुणेऽम्भसि।।
कुडवं तद्रसाद्धात्रीस्वरसात्क्षीरतो घृतात्।
कर्षांऽशं कल्कितं तिक्तात्रायन्तीधन्वयासकम्।।
मुस्तातामलकीवीरा–जीवन्तीचन्दनोत्पलम।
पचेदेकत्र संयोज्य तद्घृतं पूर्ववद्गुणैः।।**

अर्थ : त्रायमाणा एक कुडव (250 ग्राम) आठ गुना जल (2 किलो) में पकावें और शेष एक कुडव उसका रस, आँवला का रस एक कुडव, दूध एक कुडव तथा घृत एक कुडव (250 ग्राम) एकत्र. कर कुटकी, त्रायमाणा, यवासा, आँवला, शतावरि, जीवन्ती, चन्दन तथा कमल एक–एक कर्ष (प्रत्येक 10 ग्राम) कल्क मिलाकर विधिवत् घृत सिद्ध करें। यह घृत पूर्वोक्त त्रायन्तयादि क्वाथ के सदृश गुणवाला है।

विद्रधि में द्राक्षादिघृत–

**द्राक्षामधूकं खर्जूरं विदारी सशतावरी।
परूषकाणि त्रिफला तत्क्वाथे पाचयेद्घृतम्।।
क्षीरेक्षुधात्रीनिर्यासे प्राणदाकल्कसंयुतम्।
तच्छीतं शकराक्षौद्रपादिकं पूर्ववद्गुणैः।।**

अर्थ : मुनक्का, महुआ, खजूर, विदारीकन्द, शतावरि, परूषक (फालसा) तथा त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) समभाग इन सब के क्वाथ में तथा दूध, गन्ना का रस तथा आँवला के रस में गुडूची का कल्क मिलाकर विधिवत् घृत पकावे। शीतल होने पर चौथाई भाग शक्कर तथा मधु मिलाकर पान कराये। यह पूर्वोक्त त्रायन्त्यादि क्वाथ के गुण सदृश गुणवाला है।

पच्यमान विद्रधि की चिकित्सा–

विद्रधिं पच्यमानं च कोष्ठस्थं बहिरून्नतम्।।

ज्ञात्वोपनाहयेत् शूले स्थिते तत्रैव पिण्डिते।
तत्पार्श्वपीडनात्सुप्तौ दाहादिष्वल्पकेशु च।।
पक्वः स्याद्विद्रधि भित्वा व्रणवतमुपाचरेत्।
अन्तर्भागस्य चाप्येतच्चिहं पक्वस्य विद्रधेः।।
पक्वः स्रोतांसि सम्पूर्य स यात्यूर्ध्वमधोऽवा।
स्वयं प्रवृतं तं दोषमुपेक्षेत हिताशिनः।।
दशाहं द्वादशाहं वा रक्षेद्भिषगुपद्रवान्।
असम्म्यग्वहति क्लेदे वरूणादिसुखाम्भसा।।
पाययेन्मधुशिग्रु वा यवागूं तेन वा कृताम्।
यवकोलकुलत्थोत्थयूषैरन्नं च शस्यते।।

अर्थ : बाहर उठे हुए पच्मान कोष्ठस्थ (आभ्यन्तर) विद्रधि का जानकर उस पर उपनाह स्वेदन करे। उपनाह करने से वेदना के शान्त हो जाने पर तथा विद्रधि के पिण्डाकार हो जाने पर और उसके आसपास दबाने पर वेदना न हो तथा दाह आदि थोड़ा हो तो विद्रधि पकी हुई होती है। इस स्थिति में विद्रधि का भेदन कर व्रण के उपचार के समान उपचार करे। अन्तःभाग में स्थित पक्व विद्रधि का यह चिन्ह है। पक्व विद्रधि स्रोतसों को बन्द कर ऊर्ध्व भाग या अधोभाग में स्थित होकर बहती है। ऐसी स्थिति में अपने आप निकलते हुए दोष पूय की उपेक्षा करे। हितकर आहार का सेवन करते हुए दस दिन या बारह दिन तक उपद्रवों से रक्षा करें। यदि पूय अच्छी तरह न बहे तो वरूणादिगण के क्वाथ में मीठे सहिजन को मिलाकर पान करें या उसके क्वाथ से यवागू बनाकर पान कराये। अथवा यव, बेर तथा कुरथी के पकाये जल से विधिवत् सिद्ध अन्न खिलावे।

विद्रधि के दस दिन के बाद का उपचार—

ऊर्ध्वं दशाहात्त्रायन्तीसर्पिषा तैल्वकेन वा।
शोधयेद्बलतः शुद्धः सक्षौद्रं तिक्तकं पिबेत्।।
सर्वशो गुल्मवच्चैनं यथादौषमुपाचरेत्।

अर्थ : विद्रधि के उपद्रवों से रक्षा करते हुए दस दिनों के बाद त्रायन्तीघृत या तैल्वक घृत से शोधन करें। अच्छी तरह शुद्ध हो जाने पर तिक्तक घृत में शहद मिलाकर पान करें। इस प्रकार आभ्यन्तर विद्रधि की सभी प्रकार से गुल्म की तरह दोषों के अनुसार चिकित्सा करें।।

सर्वावस्थासु सर्वासु गुग्गुलुं विद्रधीषु च।।
कशायैर्यौगिकैर्युज्यात् स्वैः स्वैस्तद्वच्छिलाजतु।

अर्थ : सभी विद्रधियों की सभी अवस्था में अपने—अपने दोषानुसार यौगिक कषायों के साथ

द्ध गुग्गुलु का प्रयोग करें। इसी प्रकार शुद्ध शिलाजीत का भी प्रयोग करे।

विद्रधि की पाक से रक्षा–

पाकं च वारयेद्यत्नात् सिद्धिः पक्वे हि दैविकी।।
अपि चाऽऽशु विदाहित्वाद्विद्रधिः सोऽभिधीयते।
सति चालोचयेन्मेहे प्रमेहाणां चिकित्सितम्।।

र्थ : विद्रधि शोथ पकने न पावे इसके लिए यत्न परिश्रम– पूर्वक करें; योंकि विद्रधि के पक जाने पर उसकी चिकित्सा दैवाधीन होती है। यदि द्रधि होने वाली हो तो प्रमेह की चिकित्सा के साथ दोषानुसार विद्रधि की कित्सा करनी चाहिए।

स्तन विद्रधि की चिकित्सा–

स्तनजे व्रणवत्सर्वं न त्वेनमुपनाहयेत्।
पाटयेत्पालयन् स्तन्यवाहिनीः कृष्णचूचुकौ।।
सर्वास्वामाद्यवस्थासुन निर्दुहीत च तत्स्तनम्।

र्थ : स्तन में उत्पन्न विद्रधि की व्रण के समान (भेदन, शोधन, रोपण) कित्सा करनी चाहिए। किन्तु दुग्धवाहिनी तथा स्तन चूचूक के कृष्ण भाग ो रक्षा करते हुए शस्त्र कर्म करें और सभी आम पच्यमान तथा पक्वावस्था स्तन से दूध निकालते रहना चाहिए।

श्लेषण : प्रायः संतान होने पर सन्तानें मर जाती हैं अथवा जो स्त्रियाँ न्तान को दूध नहीं पिलाती हैं या स्वयं सन्तान दूध नहीं पीती है तो स्तन आया हुआ दूध एकत्र होकर शोथ तथा वेदना उत्पन्न करता है। यदि इस वस्था में दूध निकाल दिया जाय तो वेदना तथा शोथ शान्त हो जाता है। दि दूध नहीं निकाला जाता है तो शोथ में विदोह होकर पक जाता है। ऐसी वस्था में चूचूक और दूध–वाहिनी की रक्षा करते हुए सीधा चीरा लगाकर शो –रोपण क्रिया करें। स्तन विद्रधि की किसी भी अवस्था में उपनाह न बाँधें तथा चीरा गाने पर भी पट्टी न बाँधें।

वात जन्य वृद्धि की चिकित्सा–

(अथ वृद्धिरोगचिकित्सतम्)

शोधयेत्त्रिवृतास्निग्धं वृद्धौ स्नेहैश्चलात्मके।।
कोशाम्रतिल्वकैरण्डसुकुमारकमिश्र कैः।
ततोऽनिलघ्ननिर्यूहकल्कस्नेहैर्निरूहयेत्।।
रसेन भोजितं यश्टितैलेनान्वासयेदनु।
स्वेदप्रलेपा वातघ्नाः पक्वे भित्त्वा व्रणक्रिया।।

र्थ : वात जन्य वृद्धि में घृत–तैलादि से स्निग्ध रोगी को निशोथ के चूर्ण

से विरेचन करायें। अथवा कोशाम्र (छोटा) आम या तिल्वक से सिद्ध स्नेह या एरण्ड तैल, सुकुमारक तैल या मिश्रक तैल से विरेचन कराये। इसके बाद वातनाशक द्रव्यों के क्वाथ तथा कल्क में विधिवत् सिद्ध स्नेह (तैल) मिलाकर निरूहण वस्ति दें। इसके बाद भोजन कराकर मुलेठी के क्वाथ एवं कल्क से विधिवत् सिद्ध स्नेह (तैल–घृत) का अनुवास वस्ति दें और इसके बाद वातनाशक द्रव्यों से स्वेदन तथा प्रलेप करें। पक जाने पर भेदन कर व्रण की तरह चिकित्सा करें।

पित्तज वृद्धि की चिकित्सा–

पित्तरक्तोद्भवे वृद्धावामपक्वे यथायथम्।
शोफव्रणक्रियां कुर्यात् प्रततं च हरेदसृक्।।

अर्थ : पित्त–रक्तजन्य आम तथा पक्व वृद्धि में यथायोग्य आम वृद्धि में व्रणशोथ के समान तथा पक्व वृद्धि में व्रण के समान चिकित्सा करें और जोंक, सिंगी या सिरावेध द्वारा निरन्तर रक्तमोक्षण करायें।

कफजन्य वृद्धि की चिकित्सा–

गोमूत्रेण पिबेत्कल्कं श्लैष्मिके पीतदारूजम्।
विम्लापनादृते चाऽत्र श्लेष्मग्रन्थिक्रमो हितः।।
पक्वे च पाटिते तैलमिष्यते व्रणशोधनम्।
सुमनोऽरूष्कराङ्कोल्ल–सप्तपर्णेषु साधितम्।।
पटोलनिम्बरजनो–विडगंकुटजेशु च।

अर्थ : कफ जन्य वृद्धि में दारुहल्दी का कल्क गोमूत्र के साथ पान करें। इसमें विम्लायन क्रिया के अतिरिक्त सभी चिकित्सा कफ ग्रन्थि क्रम की तरह हितकर है। वृद्धि के पक जाने पर भेदन क्रिया करने के बाद व्रण शोधक तैल का प्रयोग करें। तुलसी, भिलावां, अंकोल तथा सप्तवर्ण के साथ विधिवत् सिद्ध व्रणशोधक तैल या परवल का पत्ता, नीम हल्दी, वायविडंग तथा कुटज के साथ विधिवत् सिद्ध व्रणशोधक तैल का प्रयोग पक्ववृद्धि के भेदन के बाद करें।

मेदोज वृद्धि की चिकित्सा–

मेदोजं मूत्रपिष्टेन सुस्विन्नं सुरसादिना।।
शिरोविरेकद्रव्यैर्वा वर्जयन्फलसेवनीम्।
दारयेद्वृद्धिपत्रेण सम्यगमेदसि सूद्धृते।।
व्रण माक्षिककासीस–सैन्धवप्रतिसारितम्।
सीव्येदभ्यज्जनं चाऽस्य योज्यं मेदोविशुद्धये।।
मनः शिलैलासुमनो–ग्रन्थिमल्लातकैः कृतम्।
तैलमाव्रणसन्धानात्स्नेहस्वेदौ च भोलयेत्।।

: मेदोज वृद्धि को अच्छी तरह स्वेदन कर सुरसादि गण के द्रव्यों को
शिरो विरेचन गण के द्रव्योंको गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करें।
ा द्रव्यों से ही स्वेदन कर फल–सेवनी (अण्ड तथा सीवन) को बचाकर
त्रनामक शस्त्र से दारण करें। मेदा के अच्छी तरह निकल जाने पर व्रण
सिस तथा सेन्धा नमक को अच्छी तरह पीसकर तथा शहद मिलाकर
ारित (लेप) करें और सीवन कर दें। इसके बाद मेदा की शुद्धि के लिये
ल, इलायची, तुलसी, पिपरामूल तथा भल्लातक इन द्रव्यों से विधिवत्
तैल का अभ्यगं करें और व्रणरोपण पर्यन्त स्नेहन तथा स्वेदन करें।

मूत्रज वृद्धि तथा अन्त्र वृद्धि की चिकित्सा–

मूत्रजं स्वेदितं स्निग्धैर्वस्त्रपट्टेन वेश्टितम्।
विध्येदधस्तात्सेवन्या स्रावयेच्च यथादरम्।।
व्रणं च स्थगिकाबद्धं रोपयेद् अन्त्रहेतुके।
फलकोशमसम्प्राप्ते चिकित्सा वातवृद्धिवत्।।

: मूत्र जन्य वृद्धि को स्निग्ध द्रव्यों से स्वेदन कर कपड़े की पट्टी से
उत कर सेवनी के नीचे शस्त्र (ब्रीहिमुख) से वेध करें और उसी वेध मार्ग से
करें। इसके बाद स्थगिका नामक बन्ध लगाकर व्रण का रोपण करें। अन्त्र
जब अण्ड कोष में न पहुँची हो तो वातवृद्धि के समान चिकित्सा करें।

वृद्धि में सुकुमार रसायन–

पचेत्पुनर्नवतुलां तथा दशपलाः पृथक्।
दशमूलपयस्याश्च गन्धैरण्डशतावरीः।।
द्विदर्भश्झरकाशेषु–मूलपोटगलान्विताः।
वहेऽपामष्टमागस्थे तत्र त्रिशत्पलं गुडात्।।
प्रस्थमेरण्डतैलस्य द्वौ घृतात्पयसस्तथा।
आवपेद् द्विपलांशं च कृष्णातन्मूलसैन्धवम्।।
यश्टीमधुकमृद्वीका–यवानीनागराणि च।
तत्सिद्धं सुकुमाराख्यं सुकुमारं रसायनम्।।
वातातपाध्वयानादि–परिहार्येश्वयन्त्रणम्।
प्रयोज्यं सुकुमाराणामीश्वराणां सुखात्मनाम्।।
नृणां स्त्रीवृन्दभर्तॄणामलक्ष्मी–कलि–नाशनम्।
सर्वकालोपयोगेन कान्तिलावण्यपुश्टिदम्।।
वर्ध्म–विद्रधि–गुल्माऽर्शो–योनिमेढ्रानिलार्तिशु।
शोफोदरखुडप्लीह–विड्विबन्धेशु चोत्तमम्।।

: पुनर्नवा एक तुला (5 किलो) तथा दशमूल (सरिवन, पिठवन, भटकटैया,
टा, गोखरू, बेल, गम्भारी, सोनपाठा, पाढल) विदारी कन्द, असगन्ध,

एरण्ड, शतावरी, कुश, डाभ, शर, कास तथा नरकट प्रत्येक दस पल (प्रत्येक 500 ग्राम) इन सबों को एकत्र कर जल एक वह (64 किलो) में पकावें। अष्टमांश शेष रहने पर छान लें और उसमें गुड़ तीस पल (1 किलो 500 ग्राम) एरण्ड तैल एक प्रस्थ (1 किलो), घृत 1 किलो तथा दूध 1 किलो मिला दें और पकावें। जब द्रवी प्रलेय अवलहवत् हो जाय तब पीपर, पिपरामूल, सेन्ध ानमक, मुलेठी, मुनक्का, अजवायन तथा सोंठ दो–दो पल (प्रत्येक 100 ग्राम) का चूर्ण मिला दें ओर रख ले। यह सुकुमार नामक रसायन सुकुमार है। (इसको 10 ग्राम की मात्रा में सेवन करें)। इसके सेवन काल में वात तथा ध ूप सेवन, मार्गगमन तथा सवारी आदि पर चलना निषिद्ध नहीं है। यह सुकुमार राजा, सुखी मनुष्य, अनेक स्त्री वाले मनुष्यों के लिये असुन्दरता तथा कलह को नाश करने वाला है। यह सभी ऋतुओं में सेवन करने से कान्ति, सुन्दरता तथा पुष्टि को देने वाला है। इसके अतिरिक्त वर्ध्म (आन्त्र वृद्धि), विद्रधि, गुल्मरोग, अर्श, योनिरोग, मेढरोरोग, वातजव्य पीड़ा, शोथ, उदर रोग, खुडरोग (वातरक्त), प्लीहा वृद्धि तथा मलावरोध में लाभदायक है।

आन्त्र वृद्धि में विविध उपचार–

यायाद्वर्ध्म ने चेच्छान्ति स्नेहरेकानुवासनैः।
बस्तिकर्म पुरः कृत्वा वगक्षणस्थं ततो दहेत्।।
अग्निना मार्गरोधार्थ मरूतः अर्धेन्दुवक्रया।
अगंगुष्ठस्योपरि स्राव–पीतं तन्तुसमं च यत्।।
उत्क्षिप्य सूच्या तत्तियग्ग्दहेच्छित्त्वा यतो गदः।
ततोऽन्यपाश्र्वेऽन्ये त्वाहुर्दहद्वाऽनामिकागगुलेः।।
गुल्मेऽन्यैर्वातकफजे प्लीह्नि चायं विधिः स्मृतः।
कनिष्ठिकानामिकयोर्विश्वाच्यां च यतो गदः।।

अर्थ : यदि स्नेहन, विरेचन तथा अनुवासन कर्म से वर्ध्म (आन्त्र वृद्धि) शान्त न हो तो पहले वस्ति कर्म कर वक्षण में स्थित आंत को वायु के मार्ग को रोकने के लिये अर्धेन्दुवक्त्र शलाका को अग्नि में तपाकर दग्ध करें और अंगूठे के ऊपर भेदन कर तन्तु के समान जो स्नायुसूत्र हैं उसे सूची से उठाकर तथा काटकर तिरछा दग्ध करें। कुछ आचार्यों का मत है कि जिस पार्श्व में रोग हो उसके विपरीत पार्श्व के अँगूठा में दग्ध करें अथवा अनामिका अँगूलि के सिरा सूत्र को दग्ध करें। यह विधि वातकफज गुल्म रोग तथा प्लीह रोग में लाभदायक है। जिधर, विश्वाची रोग हो उस पार्श्व की कनिष्ठिका तथ्झा अनामिका के स्नायु सूत्रों को दग्ध करें।

□□□□□

सप्तम् अध्याय

अथाऽतो गुल्मचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह समाहुरात्रेयादयो महर्षयः।

f : विद्रधि तथा वृद्धिरोग चिकित्सा व्याख्यान निरूपण के बाद गुल्म केत्सा का व्याख्यान करेंगें ऐसा आत्रेयादि महर्षियों ने कहा था।

वातज गुल्म की चिकित्सा–

गुल्मं बद्धशकृद्वातं वातिकं तीव्रवेदनम्।
रूक्षशीतोद्भवं तैलैः साधयेद्वातरोगिकैः।।
पानाऽन्नाऽन्वासनाऽभ्यगंः स्निग्धस्य स्वेदमाचरेत्।
आनाहवेदनास्तम्भविबन्धेशु विशेषतः।।
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारूतमुल्वणम्।
भित्त्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति।।

f : पुरीष तथा अपान वायु अवरूद्ध तीव्र वेदना वाले वार्तिक रूक्ष तथा । से उत्पन्न गुल्म रोग को वात शामक तैलों से चिकित्सा करें और पूर्वोक्त शामक तैल के पान, अन्न में मिलाकर भोजन अनुवासन वस्ति तथा अभ्यगं लेस) द्वारा स्निग्ध गुल्म के रोगी का स्वेदन करें। आनाह, वेदना, स्तम्भ तथा न्ध में विशेषकर स्वेदन करें। स्वेदन स्रोतसों को मुलायम कर प्रकुपित वायु को त कर तथा विबन्ध को भेदनकर स्निग्ध रोगी के गुल्म को दूर करता है।

वातज गुल्म में स्नेहपान तथा वस्ति कर्म–

स्नेहपानं हितं गुल्मे विशेषेणोर्ध्वनाभिजे।
पक्वाशयगते बस्तिरूभयं जठराश्रये।।

f : नाभि के ऊर्ध्व भाग में स्थित वात गुल्म में स्नेहपान विशेष रूप से ।कर है। पक्वाशय (मलाशय) गत वात गुल्म में वस्ति (निरूहण तथा वासन वस्ति) तथा जठर (नाभि तथा आन्त्र) में स्थित गुल्म में स्नेहन तथा वस्ति । दोनों करें।

वात गुल्म में अन्न पान–

दीप्तेऽग्नौ वातिके गुल्मे विबन्धेऽनिलवर्चसोः।
बृंहणान्यन्नपानानि स्निग्धोष्णानि प्रदापयेत्।।

f : वातज गुल्म में अग्नि के प्रदीप्त रहने पर तथा मल एवं अपान वायु

के अवरूद्ध रहने पर बृंहण, स्निग्ध तथा उष्ण अन्न एवं पान का सेवन करावें।

वातज गुल्म में वस्ति कर्म–

पुनःपुनः स्नेहपानं निरूहाः सानुवासनाः।
प्रयोज्या वातजे गुल्मे कफपित्तानुरक्षिणः।।
बस्तिकर्म परं विद्याद् गुल्मघ्नं तद्धि मारूतम्।
स्वस्थाने प्रथमं जित्वा सद्यो गुल्ममपोहति।।
तस्मादभीक्ष्णशो गुल्मा निरूहैः सानुवासनैः।
प्रयुज्यमानैः शाम्यन्ति वातपित्तकफात्मकाः।।

अर्थ : वातज गुल्म में बार–बार स्नेहपान, निरूहणवसित तथा अनुवासन वस्ति करें और साथ ही वातपित्त की रक्षा करते रहें। वस्ति कर्म उत्तम गुल्म नाशक है। वह वायु को अपने स्थान पक्वाशय में ही जीत कर गुल्म को शीघ्र ही दूर करता है। अतः वातज, पित्तज तथा कफज गुल्म निरन्तर निरूहण तथा अनुवासन वस्ति से शान्त हो जाते हैं।

हिगग्वादि घृतम्–

वातज गुल्म में हिंग्वादिघृत–

हिगंगुसौवर्चलव्योश–विडदाडिमदीप्यकैः।
पुष्कराजाजिधान्याम्ल–वेतसक्षारचित्रकैः।।
शठीवचाजगन्धैलासुरसैर्दधिसंयुतैः।
शूलानाहहरं सर्पिः साधयेद् वातगुल्मिनाम्।।

अर्थ : हींग, सौवर्चल नमक, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), विड नमक, अनारदाना, अजवायन, पुष्करमूल, जीरा, धनियाँ, अम्लवेंत, यवक्षार, चित्रक, कचूर, वच, अजमोद, इलायची तथा तुलसी समभाग इन सबों के कल्क के साथ दही में विधिवत् घृत सिद्ध करें। यह वात गुल्म के रोगियों के शूल तथा अनाह को दूर करता है।

हपुषादिघृतम्–

वात गुल्मादि में हपुषाद्य घृत–

हपुशोषणपृथ्वीकापच्चकोलकदीप्यकैः।
साजाजिसैन्धवैर्दध्ना दुग्धेन च रसेन च।।
दाडिमान्मूलकात्कोलात्पचेत्सर्पिर्निहन्ति तत्।
वातगुल्मोदरानाह–पार्श्वहृत्कोशठवेदनाः।।
योन्यर्शोग्रहणीदोष–कासश्वासारूचिज्वरान्।

अर्थ : हाऊबेर, मरिच, मंगरैल, पंच्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), अजवायन, जीरा तथा सेन्धानमक समभाग इन सबके कल्क दही, दूध ा तथा अनार का रस, मूली का रस तथा बेर के रस के साथ विधिवत् घृत

सिद्ध करें। यह वात गुल्म, उदररोग, अनाह, पार्श्वशूल, हृद्रोग, कोष्ठवेदना, योनिरोग, अर्श रोग, ग्रहणी विकार, कास, श्वास, अरूचि तथा ज्वर को नष्ट करता है।

दाधिकं घृतम्–

गुल्म रोग में दाधिक घृत–

दशमूलं बलां कालां सुषवीं द्वौ पुनर्नवौ।।
पौष्करैरण्डरास्नाश्व–गन्धाभार्गर्यमृताशठीः।
पचेद्गन्धपलाशं च द्रोणेऽपां द्विपलोन्मितम्।।
यवैःकोलैः कुलत्थैश्च माशैश्च प्रास्थिकैः सह।
क्वाथेऽस्मिन् दधिपात्रे च घृतप्रस्थं विपाचयेत्।।
स्वरसैर्दाडिमाम्रातमातुलुगोंद्भवैर्युतम्।
तथा तुषाम्बुधान्याम्लयुतैः श्लक्ष्णैश्च कल्कितैः।।
भार्गीतुम्बुरुषड्ग्रन्थाग्रन्थिरास्नाऽग्निधान्यकैः।
यवानकयवान्यम्लवेतसासितजीरकैः।।
अजाजीहिंगगुहपुषाकारवीवृषकोषकैः।
निकुम्भकुम्भमूर्वेभपिप्पलीवेल्लदाडिमैः।।
श्वदंष्ठात्रपुसैर्वारुबीजहिंस्राऽश्मभेदकैः।
मिशिद्विक्षारसुरससारिवानीलिनीफलैः।।
त्रिकटुत्रिपटूपेतैर्दाधिकं तद्वयपोहति।
रोगानाशुतरं पूर्वान्कश्टानपि च शीलितम्।।
अपस्मारगरोन्मादमूत्राघातानिलामयान्।

अर्थ : दशमूल (सरिवन, पिठवन, भटकटैया, वनभण्टा, गोखरू, बेल, गम्भारी, अरसी, सोनापठा, पाढल) बलामूल, कालानुसारिवा, मंगरैल, सफेद पुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, पुष्करमूल, एरण्ड की जड़, रास्ना, अश्वगन्धा, वभनेठी, गुडूची, कचूर तथा गन्धपलाश (तेजपत्ता) दो–दो पल (प्रत्येक 100 ग्राम) और जव, बेर, कुरथी तथा उड़द एक–एक प्रस्थ (प्रत्येक 1 किलो) इन सब को जल एक द्रोण (16 किलो) में पकावें। अष्टमांशाव शेष क्वाथ, दही एक पात्र (4 किलो), अनार का रस एक किलो, आमला का रस एक किलो, विजौरा नींबू का रस एक किलो, तुषाम्बु काज्जी तथा धान्याम्बु कांज्जी एक–एक किलो में वभनेठी, तुंबरू, वच, पिपरामूल, रास्ना, चित्रक, धनियाँ, यवानक (अजमोदा), अजवायन, अम्लवेंत, स्याहजीरा, जीरा, हींग, हाऊबेर, मंगरैल, अडूसा, मरिच, निकुम्भ, कुम्भ, मूर्वा, गजपीपर, विडंग, अनारदाना, गोखरू, खीरा का बीज, एर्वारू (ककड़ीबीज), हैंस, पाषाण भेद, सोया, यवक्षार, सज्जीक्षार, तुलसी, सारिवा, नील का बीज, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिपटु (सेन्धानमक,

सौवर्चल नमक तथा विडनमक), समभाग इन सबका कल्क मिलाकर घृत एक प्रस्थ (1 किलो) विधिवत् घृत सिद्ध करें। यह दाधिक घृत है। यह घृत सेवन करने से वात गुल्म तथा पूर्वोक्त वात गुल्म आनाह आदि के कष्ट, अपस्मार, उन्माद, मूत्राघात तथा वात व्याधियों को नष्ट करता है।

त्र्यूषणादिकं घृतम्–

वात गुल्म में त्र्यूषणादि घृत–

त्र्यूषणत्रिफलाधान्यचविकावेल्लचित्रकैः।।
कल्कीकृतैर्घृतं पक्वं सक्षीरं वातगहुल्मनुत्।

अर्थ : त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), धनियां, चव्य, विडंग, चित्रक समभाग इन सबके कल्क के साथ दूध मिलाकर विधिवत् घृत सिद्ध करें। यह वात गुल्म को दूर करता है।

लशुनाद्यं घृतम्–

वात गुल्म में लसुनादि घृत–

तुलां लशुनकन्दानां पृथक्पच्चपलांशकम्।।
पच्चमूलं महच्चाम्बुमाराधें तद्विपाचयेत्।
पादशेषं तदर्धेन दाडिमस्वरसं सुराम्।।
धान्याम्लं दधि चादाय पिष्टांश्चार्धपलांशकान्।
त्र्यूषणत्रिफलाहिंगगुयवानीचव्यदीप्यकान्।।
साम्लवेतससिन्धूत्थदेवदारून्पचेद्घृतात्।
तैः प्रस्थं तत्परं सर्ववातगुल्मविकारजित्।।

अर्थ : छिलका रहित लहसुन, एक तुला (5 किलो), वृहत्पच्चमूल (बेला गम्भारी, अरणी, सोनापाठा, पाढ़ल) अलग–अलग पाँच पल (प्रत्येक 250 ग्राम) इन सबको जल आधा भार (2 द्रोण 32 किलो) में पकावे। चौथाई शेष रहने पर क्वाथ और अनार का रस, मद्य, कांज्जी तथा दही प्रत्येक क्वाथ के आधा (प्रत्येक 4 किलो) लेकर उसमें त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), हींग, अजमोदा, चव्य, अजवायन, अम्लवेंत, सेन्धानमक तथा देवदारू प्रत्येक आधा–आधा पल (प्रत्येक 25 ग्राम) इन सबका कल्क मिलाकर धृत एक प्रस्थ (1 किलो) विधिवत् पकावें। यह सभी प्रकार के वात गुल्म विकारों को दूर करता है।

वात गुल्म में शट्पल घृत–

शट्पलं वा पिबेत् सर्पिर्यदुक्तं राजयक्ष्मणि।
प्रसन्नया वा क्षीरार्थः सुरया दाडिमेन वा।।
घृते मारूतगुल्मघ्नः कार्यो दघ्नः सरेण वा।

अर्थ : वातज गुल्म में जो राजयक्ष्मा प्रकरण में षट्पल घृत कहा गया है उसको पान करें, किन्तु उसमें कहे गये दूध के स्थान पर प्रसन्ना या सुरा अथवा अनार का रस या दही की मलाई मिलाकर वात गुल्म नाशक षट्पल घृत सिद्ध करें।

वात गुल्म में वमन–

वातगुल्मे कफो वृद्धो हत्वाऽग्निमरुचि यदि।।
हृल्लासं गौरवं तन्द्रां जनयेदुल्लिखेत्तुतम्।

अर्थ : यदि वात गुल्म में कफ बढ़कर अरुचि, हल्लास, गुरुता तथा तन्द्रा उत्पन्न करें तो कफ को वमन द्वारा निकाल दें।

गुल्म में निर्यूहादि के प्रयोग का निर्देश–

शूलानाहविबन्धेशु ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम्।।
निर्यूहचूर्णवटकाः प्रयोज्या घृतभेषजैः।

अर्थ : गुल्मरोग में शूल, आनाह तथा विबन्ध होने पर घृत पक्व औषधों से आशय को स्निग्ध जानकर निर्यूह (क्वाथ), चूर्ण तथा वटी का प्रयोग करें।

चूर्ण प्रयोग में अनुपान–

कोलदाडिमधर्माम्बु– तक्रमद्याम्लकाञ्जिकैः।।
मण्डेन वा पिबेत्प्रातश्चूर्णान्यन्नस्य वा पुरः।

अर्थ : गुल्म नाशक चूर्ण आदि को प्रातःकाल या भोजन के पहले बेर का रस, अनार का रस, धूप में गरम किया हुआ जल, मट्ठा, खट्टी कांज्जी तथा मण्ड के साथ पान करें।

गुल्म रोग में नींबू रसभावित चूर्ण का प्रयोग–

चूर्णानि मातुलुगस्य भावितान्यसकृद्रसे।
कुर्वीत कार्मुकतरान् वटकान् कफवातयोः।।

अर्थ : गुल्म रोग में कफ तथा वात की अधिकता होने पर गुल्मनाशक चूर्ण को विजौरे निम्बू के रस में अनेक बार भावित कर बटक बनावे। ये अधिक कार्यक (लाभदायक) होते हैं।

हिगग्वादिचूर्णम–

गुल्म में हिंग्वादि चूर्ण–

हिगगुवचाविजयापशुगन्धा–
दाडिमदीप्यकधान्यकपाठाः।
पुष्करमूलशठीहपुषाऽग्नि–
क्षारयुगत्रिपटुत्रिकटूनि।।
साजाजिचव्यं सहतित्तिडीकं

सवेतसाम्लं विनिहन्ति चूर्णम्।
हृत्पार्श्वबस्तित्रिकयोनिपायु–
शूलानि वाय्वामकफोद्भवानि।।
कृच्छ्रान् गुल्मान्वातविण्मूत्रसगं
कण्ठे बन्धं हृद्ग्रहं पाण्डुरोगम्।
अन्नाऽश्रद्धाप्लीहदुर्नामहिध्मा–
वर्ध्माध्मानश्वासकासाग्निसादान्।।

अर्थ : हींग, वच, हर्रे, पशुगन्धा (अजमोदा), अनारदाना, अजवायन, धनियां, पाठा, पुष्करमूल, कचूर, हाऊबेर, चित्रक, क्षारद्वय, (सज्जीक्षार, यवक्षार), त्रिपटु (सेन्धानमक, सौवर्चलनमक, विडनमक), त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), जीरा, चव्य, इमली तथा अम्लबेत समभाग इन सबका चूर्ण वात, आम तथा कफ से उत्पन्न हृद्ररोग, पार्श्वशूल, वस्ति शूल, त्रिकशूल, योनिशूल, गुदा शूल, कष्टसाध्यगुल्म रोग, वात, मूत्र तथा मल की रूकावट, गलग्रह, हृद्रग्रह, पाण्डुरोग, अरूचि, प्लीहा विकार, अर्श, हिचकी, आन्त्रवृद्धि, आध्मान, श्वास, कास तथा मन्दाग्नि को नष्ट करता है।

भागवृद्ध चूर्णम्–

गुल्मरोग में वैश्वानर चूर्ण–

लवण–यवानी–दीप्यक–कण–नागरमुतरोतरं वृद्धम्।
सर्वसमानहरीतकिचूर्ण वैश्वानरः साक्षात्।।

अर्थ : सेन्धानमक एक भाग, अजवायन दो भाग, अजमोदा तीन भाग, पीपर चार भाग, सोंठ पाँच भाग तथा सभी के बराबर हर्रे इन सबको चूर्ण साक्षात वैश्वानर है। अर्थात् अग्नि स्वरूप है और अन्न को शीघ्र ही पचाता है।

हिगंग्वष्टकम्–

वात गुल्म में हिंग्वष्टक चूर्ण–

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे
समधरणघृतानामष्टमो हिगगुभागः।
प्रथमकवलभोज्यः सर्पिशा चूर्णकोऽयं
जनयति जठराग्नि वातगुल्मं निहन्ति।।

अर्थ : त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), अजमोदा, सेन्धा नमक स्याहजीरा, सफेद जीरा तथा हींग समभाग इन सबका चूर्ण बनावें। यह चूर्ण घृत के साथ प्रथम ग्रास में खाने से जठराग्नि को बढ़ाता है तथा वातगुल्म को नष्ट करता है।

विश्लेषण : हिंग्वष्टक चूर्ण वात रोगों के लिये विशेषकर अपान वायु की विकृति में इसका प्रयोग होता है। इसके मूल पाठ में भोजन के पहले प्रथम

ग्रास में घी के साथ मिलाकर खाने के लिये कहा गया है। "अपाने विगुणे वायौ भोजनाग्रे प्रशस्यते।" इस नियम के अनुसार आचार्य का यह अभिमत है कि गुल्म और अपानवायु की विकृति में इसका प्रयोग करना चाहिए। अधिकांश वैद्य वर्ग तथा कुछ टीकाओं में भी अष्टम का अर्थ एक द्रव्य का आठवाँ भाग देते हैं किन्तु यह अर्थ उचित नहीं है। अष्टम शब्द में अष्टन् शब्द से पूरण अर्थ में मयट् प्रत्यय करने से अष्टम बना है। अतः सात द्रव्यों के साथ आठवाँ हींग लेना चाहिए। अर्थात् सात समान भाग में लेते हुए उसी मात्रा में आठवाँ हींग देना चाहिए।

व्याधिशार्दूलः–

गुल्म में हिंग्वादि शार्दूल चूर्ण–

हिंगूग्राबिडशुण्ठयजाजिविजया–वाटयाभिधानामयै–
श्चूर्णः कुम्भनिकुम्भशूलसहितैर्भागोत्तरं वर्धितैः।
पीतः कोष्णजलेन कोष्ठजरुजो गुल्मोदरादीनयं
शार्दूलः प्रसभं प्रमथ्य हरति व्याधीन् मृगौघानिव।।

अर्थ : हींग एक भाग, बालवच दो भाग, विड नमक तीन भाग, सोंठ चार भाग, जीरा पाँच भाग, हर्रे छः भाग, बला मूल सात भाग, कूट आठ भाग, कुम्भ (निशोथ) नव भाग, निकुम्भ मूल, (दन्ती) दस भाग इन सबका चूर्ण बनावें। यह गरम जल से पान करने से उदर शूल, गुल्म रोग तथा उदर रोग आदि रोगों को हठ पूर्वक दूर करता है। जैसे शेर हठपूर्वक मृग समूहों को मथ कर नष्ट करता है।

नाराचचूर्णम्–

गुल्म रोग में सैन्धवादि चूर्ण–

सिन्धूत्थपथ्याकणदीप्यकानां
चूर्णानि तोयैः पिबतां कवोष्णैः।
प्रयाति नाशं कफवातजन्मा
नाराचनिर्भिन्न इवामयौघः।।

अर्थ : सेन्धानमक, हर्रे, पीपर तथा अजवायन समभाग इन सबके चूर्ण को थोड़ा गरम जल से पान करने वाले व्यक्तियों का वातजन्य रोग समूह नष्ट हो जाता है। जैसे वाण द्वारा वृक्ष समूह नष्ट हो जाता है।

गुल्म रोग में पूतिकादि भस्म–

पूतीकपत्रगजचिर्भटचव्यवह्नि
व्योषं च संसतरचितं लवणोपधानम्।
दग्ध्वाव विचूर्ण्य दधिमसतुयुतं प्रयोज्यं।।
गुल्मोदरश्वयथुपाण्डुगुदोद्भवेषु।।

अर्थ : पूति करंज्ज के पत्र, नागकेशर, चिर्भट चव्य, चित्रक तथा व्योष (सोंठ,

पीपर, मरिच), समभाग इन सबों के चूर्ण को पात्र में बिछाकर उसके ऊपर सेन्धनमक रखकर मुख बन्द कर दें और जलाकर चूर्ण बना दें। इस चूर्ण को दही के पानी के साथ प्रयोग करें। यह गुल्मरोग, उदररोग, शोथ, पाण्डुरोग तथा अर्श रोगों को नष्ट करता है।

त्रिगुणोत्तरं भेषजम्–

गुल्मरोग में हिग्वादि योग–

हिगगुत्रिगुणं सैन्धवमसमात्त्रिगुणं तु तैलमैरण्डम्।
तत्त्रिगुणरसोनरसं गुल्मोदरवर्ध्मशूलघ्नम्।।

अर्थ : हींग एकभाग, सेन्धानमक तीन भाग, एरण्ड तैल नवभाग तथा लहसुन का रस सत्ताईस भाग इन सबको मिलाकर पान करने से यह योग गुल्म रोग, उदररोग, आन्त्र वृद्धि तथा शूल को नष्ट करता है।

वात गुल्म में मातुलुंगादि योग–

मोतुलुगंरसो हिगगु दाडिमं बिडसैन्धवम्।
सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरूजापहम्।।

अर्थ : विजौरा नींबू का रस, हींग, अनारदाना, विड नमक तथा सेन्धा नमक समभाग इन सबों का चूर्ण सुराभण्ड में मिलाकर पान करें। यह वात गुल्म की पीड़ा को दूर करता है।

गुल्म रोग में शुण्ठयादि योग–

शुण्ठयाः कर्श गुडस्य द्वौ धौतात्कृष्णतिलात्पलम्।
खादन्नेकत्र सज्चूर्ण्य कोष्णक्षीरानुपो जयेत्।।
वातहृद्रोगगुल्मार्शोयोनिशूलशकृद्ग्रहान्।

अर्थ : सोंठ एक कर्ष (100 ग्राम), गुड़ दो कर्ष (200 ग्राम) तथा धोया हुआ छिलका रहित काला तिल एक पल (50 ग्राम) इन सबको एकत्र चूर्ण बनाकर थोड़ा गरम दूध के अनुपान के साथ खाने से वातरोग, हृदय रोग, गुल्म रोग, अर्शरोग, योनि शूल तथा मूल बिबन्ध को दूर करता है।

वात गुल्म में एरण्ड तैल का प्रयोग–

पिबेदेरण्डतैलं तु वातगुल्मी प्रसन्नया।।
श्लेष्मण्यनुबले वायो पित्तं तु पयसा सह।

अर्थ : वातज गुल्म का रोगी कफ के अनुबन्ध रहने पर एरण्ड तैल प्रसन्ना के साथ पान करे और पित्त के अनुबन्ध होने पर एरण्ड तैल तथा गरम दूध के साथ पान करे।

वात गुल्म में विरेचन एवं रक्तमोक्षण का विधान–

विवृद्धं यदि वा पित्तं सन्तापं वातगुल्मिनः।।
कुर्याद्विरेचनीयोऽसौ सस्नेहैरानुलोमिकैः।

तापानुवृत्तावेवं च रक्तं तस्याऽवसेचयेत्।।

अर्थ : वातज गुल्म के रोगी को सन्ताप या पित्त के बढ़े रहने पर अनुलोमन करने वाले स्नेह (तैल–घृत) से विरेचन करायें। विरेचन करने के बाद भी यदि संताप बना रहे तो रोगी का रक्त मोक्षण करायें।

वात गुल्म में रसोन क्षीर–

साधयेच्छद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम्।
क्षीरोदकेऽश्टगुणिते क्षीरशेषं च पाचयेत्।।
वातगुल्ममुदावर्तं गृध्रसीं विषमज्वरम्।
हद्रोगं विद्रधिं शोष साधयत्याशु तत्पयः।

अर्थ : सूखे तथा छिलका रहित लहसुन चार पल (200 ग्राम) लेकर दूध तथा पानी आठ गुना (2 किलो दूध तथा 2 किलो पानी) में पकावें और दूध मात्र शेष रह जाने पर छान कर पिलावें यह दूध वात गुल्म, उदावर्त, गृध्रसीवात, विषमज्वर, हृदयरोग, विद्रधि तथा शोथ रोग को शीघ्र ही दूर करता है।

गुल्म रोग में तैल आदि का प्रयोग–

तैलं प्रसन्नागोमूत्रमारनालं यवाग्रजः।
गुल्मं जठरमानाहं पीतमेकत्र साधयेत्।।

अर्थ : तैल, प्रसन्ना, गोमूत्र, अपरनाल तथा यवक्षार इन सबको मिलाकर पीने से यह योग गुल्मरोग, उदररोग तथा आनाह रोग को दूर करता है।

गुल्मज शूल आनाह आदि में चित्रकादि क्वाथ–

चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीक्वाथः परं हितः।
शूलानाहविबन्धेशु सहिंगंगुबिडसैन्धवः।।

अर्थ : चित्रक, पिपरामूल, एरण्ड की जड़ तथा सोंठ समभाग इन सबका क्वाथ हींग, विडनमक तथा सेन्धा नमक मिलाकर पान करने से गुल्म जन्य शूल, आनाह तथा विबन्ध में हितकर है।

गुल्मज उदररोग आदि में पुष्करादि क्वाथ–

पुष्करैरण्डयोर्मूलं यवधन्वयवासकम्।
जलेन क्वथितं पीतं कोष्ठदाहरुजापहम्।।

अर्थ : पुष्कर मूल, एरण्ड की जड़, यव तथा यवासा समभाग जल के साथ इन सबका क्वाथ पान करने से गुल्मज उदररोग, दाह तथा शूल को दूर करता है।

गुल्मज उदर शूलादि में लादि क्वाथ–

वाटयाहवैरण्डदर्भाणां मूलं दारू महौषधम्।
पीतं निःक्वाथ्य तोयेन कोष्ठपृष्ठांसशूलजित्।।

अर्थ : बलामूल, एरण्ड मूल, डाभ की जड़, देवदारू तथा सोंठ समभाग इन सबका जल के साथ बनाया क्वाथ गुल्म जन्य उदररोग, दाह तथा अंश फल के शूल को दूर करता है।

वात गुल्म में शिलाजीत का प्रयोग तथा भोजन—

शिलाजं पयसाऽनल्पपच्चमूलशृतेन वा।
वातगुल्मी पिबेद्वाटयमुदावर्ते तु भोजयेत्।।
स्निग्धं पैप्पलिकैर्यूषैर्मूलकानां रसेन वा।
बद्धविण्मारूतोऽश्नीयात्क्षीरेणोष्णेन यावकम्।।
कुल्माषान्वा बहुस्नेहान् भक्षयेल्लवणोत्तरान्।

अर्थ : वात जन्य गुल्म में शुद्ध शिलाजीत, दूध या पंच्चमूल (बेल, गम्भारी, अरणी, सोना पाठा तथा पाढल) के क्वाथ के साथ पान करें और उदावर्त होने पर पीपर के यूष या मूली के रस के साथ घृत मिश्रित यव की दरिया या रोटी खिलावें। यदि गुल्मरोग में मल तथा वायु की रूकावट हो तो गरम दूध के साथ यव की दरिया का प्रयोग करें। अथवा जव की घुघुनी में सेन्धानमक तथा अधिक घी मिलाकर खिलायें।

गुल्म में घृत का प्रयोग—

नीलिनीत्रिवृतादन्तीपथ्याकम्पिल्लकैः सह।।
समलाय घृतं देयं सबिडक्षारनागरम्।

अर्थ : गुल्म रोग में मल का संचय होने पर नील, निशोथ, दन्ती, हर्रे तथा कवील के चूर्ण के साथ घी, विडनमक, यवक्षार तथा सोंठ का चूर्ण मिलाकर दें।

गुल्म रोग में नीलिनी घृत—

नीलिनीं त्रिफलां रास्नां बलां कटुकरोहिणीम्।।
पचेद्विडगं व्याघ्रीं च पालिकानि जलाढके।
रसेऽष्टभागशेषे तु घृतप्रस्थं विपाचयेत्।।
दध्नः प्रसथेन संयोज्य सुधाक्षीरपलेन च।
ततो घृतपलं दद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम्।।
जीर्णे सम्यग्विरिक्तं च भोजयेद्रसभोजनम्।
गुल्मकुष्ठोदरव्यगशोफपाण्ड्वामयज्वरान्।।
श्वित्रं प्लीहानमुन्मादं हन्तयेतन्नीलिनीघृतम्।

अर्थ : नीलिनी (नील के बीज), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), रास्ना, बला, कुटकी, वायविउगं तथा कण्टकारी एक–एक पल (प्रत्येक 50 ग्राम) लेकर जल एक आढक (4 किलो) में पकावें। अष्टमांश शेष रस में घृत एक प्रस्थ (1 किलो), दही एक प्रंस्थ (1 किलो) तथा सेहुंड का दूध एक पल (50 ग्राम)

मिलाकर विधिवत् पकावें। सिद्ध हो जाने पर शीशा के पात्र में रख दें। इसके बाद उसमें से घृत एक पल (50 ग्राम) यवागू तथा मण्ड मिलाकर पिलावें। पच जाने तथा अच्छी तरह विरेचन हो जाने के बाद भोजन करायें। यह नीलिनी घृत गुल्म रोग कुष्ठरोग, उदरोग, व्यंग (मुहांसा), शोथ, पाण्डुरोग, ज्वर, श्वित्र, प्लीहा रोग तथा उन्माद रोग को नष्ट करता है।

वातज गुल्म में पथ्य–

कुक्कुटाश्च मयूराश्च तित्तिरिक्रौञ्च्वर्तकाः।।
शालयो मदिराः सर्पिर्वातगुल्मचिकित्सितम्।
मितमुष्णं द्रवं स्निग्धं भोजनं वातगुल्मिनाम्।।
समण्डा–वारूणी–पानं तप्तं वा धान्यकैर्जलम्।

अर्थ : जड़हन धान की मात्र मदिरा तथा घृत वात गुल्म की चिकित्सा है मात्रा में थोड़ा गरम तथा द्रव पदार्थ एवं स्निग्ध पदार्थ वात गुल्म के रोगियों के लिये हितकर भोगना है। मण्ड (मांड) तथा वारूणी (मदिरा) पान या धनियाँ का पकाया हुआ जल वात गुल्म के रोगियों के लिए हितकर है।

पैत्तिक–गुल्मचिकित्सा।

पैत्तिक गुल्मरोग में विरेचन–

स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं हितम्।।
द्राक्षाऽभयागुडरसं कम्पिल्लं वा मधुद्रुतम्।
कल्पोक्तं रक्तपितोक्तं गुल्मे रूक्षोष्णजे पुनः।।
परं संशमनं सर्पिस्तिक्तं वासाघृतं शृतम्।
तृणाख्यपच्चकक्वाथे जीवनीयगणेन वा।।
शृतं तैनैव वा क्षीरं न्यग्रोधादिगणेन वा।
तत्राऽपि स्रंसनं युञ्ज्याच्छीघ्रमात्ययिके भिषक्।।
वैरेचनिकसिद्धेन सर्पिशा पयसाऽपि वा।

अर्थ : स्निग्ध तथा उष्म उपचार से उत्पन्न पित्तज गुल्म में विरेचन उत्तम है। इसके लिए मुनक्का तथा हर्रे का चूर्ण गुड़ के रस के साथ दें। या कवीला को मधु के साथ पतला कर दें। अथवा कल्प स्थान में या रक्त पित्ताधिकार में कथित त्रिवृता–त्रिफला विरेचन दें। रूक्ष एवं उष्ण कारण्टजन्य पैतिकगुल्म में तिक्तक घृत वासा घृत या पंच्चतृण क्वाथ से जीवनीय गण के द्रव्यों से सिद्ध घृत दें। अथवा न्यग्रोधादि गण के क्वाथ में जीवनीय गण से सिद्ध किया हुआ घृत दें। इसी प्रकार रूक्ष उष्ण कारण्टजन्य से शमनीय पैत्तिक गुल्म में भी अधिक आवश्यकता होने पर वैद्य शीघ्र विरेचन विहित द्रव्यों से सिद्ध घृत दें या दूध से विरेचन दें।

पित्तज गुल्म में विरेचनार्थ आमलकादि घृत–

रसेनामलकेक्षूणां घृतप्रस्थं विपाचयेत्।।
पथ्यापादं पिबेत्सर्पिसतत्सिद्धं पितगुल्मनुत्।
पिबेद्वा तैल्वकं सर्पिर्यच्चोक्तं पित्तविद्रधौ।।

अर्थ : आँवला का रस तथा गन्ना के रस के साथ घृत एक प्रस्थ (1 किलो) तथा हर्रे कल्क चौथाई भाग (250 ग्राम) मिलाकर विधिवत् घृत सिद्ध करें (आँवला का रस 2 किलो, गन्ना का रस 2 किलो, हर्रे का कल्क 250 ग्राम तथा घृत 1 किलो) और उस सिद्ध घृत को पान करें। यह पैत्तिक गुल्म को दूर करता है। अथवा पैत्तिक गुल्म में तैल्वेक घृत जो पित्त विद्रधि में कहा गया है उसको पान करें।

पित्तज गुल्म में द्राक्षादि योग–

द्राक्षां पयस्यां मधुकं चन्दनं पद्मकं मधु।
पिबेत्तण्डुलतोयेन पित्तगुल्मोपशान्तये।।

अर्थ : मुनक्का, क्षीर विदारी, मुलेठी, चन्दन तथा पद्मकाठ समभाग इन सबका चूर्ण शहद में मिलाकर चावल के धोअन के साथ पित्तज गुल्म की शान्ति के लिए पान करें।

पित्तज गुल्म में त्रायमाणा क्वाथ–

द्विपलं त्रायमाणाया जलद्विप्रस्थसाधितम्।
अष्टभागस्थितं पूतं कोष्णं क्षीरसमं पिबेत्।।
पिबेदुपरि तस्योष्णं क्षीरमेव यथाबलम्।
तेन निर्हृतदोषस्य गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः।।

अर्थ : त्रायमाणा दो पल (100 ग्राम) लेकर जल दो प्रस्थ (2 किलो) में पकावें और अष्टमांश शेष रहने पर छानकर थोड़ा गरम समभाग दूध मिलाकर पान करें और उसके ऊपर पाचन (पाचन शक्ति) बल के अनुसार गरम दूध ही पान करें। इससे दोषों के निकल जाने पर पैत्तिक गुल्म शान्त हो जाता है।

पित्तज गुल्म में अभ्यगं प्रयोग–

दाहेऽभ्यगों घृतः शीतः साज्यैर्लेपो हिमौषधैः।
स्पर्शः सरोरूहां पत्रैः पात्रैश्च प्रचलज्जलैः।।

अर्थ : पित्तजन्य गुल्म में दाह होने पर शीतल घृत का अभ्यंग करें तथा चन्दन आदि शीतल द्रव्यों का चूर्ण घृत में मिलाकर लेप करें और कमल के पत्तों का स्पर्शकर तथा शीतल जल से पूर्ण पात्रों को स्पर्श करें। अर्थात् कमल का पत्ता और शीतल जल पूर्ण कांसा का कटोरा दाह पीड़ित स्थान पर रखें।

पित्तज गुल्म में रक्त मोक्षण विधि–

विदाहपूर्वरूपेषु शूले वह्नेश्च मार्दवे।
बहुशोऽपहरेद्रक्तं पित्तगुल्मे विशेषतः।।
छिन्नमूला विदह्यन्ते न गुल्मा यान्ति च क्षयम्।
रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चाऽस्ति रूक्।।

अर्थ : पित्तज गुल्म में पकने के विदाह आदि पूर्ण रूप हो और शूल हो तथा मन्दाग्नि हो तो बार–बार अधिक मात्रा में रक्तमोक्षण कराये। जब रक्त रूपी मूल कट जाता है तब गुल्म में विदाह नहीं होता है और वह शान्त हो जाता है। रक्त ही पाक का रूप धारण करता है। जब रक्त नहीं रहता है तब पाक जन्यपीड़ा नहीं होती है।

गुल्म दोष के शान्त होने पर का प्रयोग–

हृतदोषं परिम्लानं जागलैस्तर्पितं रसैः।
समाश्वस्तं सशेषार्तिं सर्पिरभ्यासयेत्पुनपः।।

अर्थ : पित्तज गुल्म में विरेचन तथा रक्त मोक्षण आदि से दोषों के निकल जाने पर कृश तथा दुर्बल रोगी को कुछ कृशता दूर होने पर थोड़ी वेदना रह जाय तो पुनः पूर्वोक्त घृत पान कराये।

पाकोन्मुख पित्तज गुल्म में चिकित्सा संकेत–

रक्तपित्तातिवृद्धत्वात्क्रियामनुपलभ्य वा।
गुल्मे पाकोन्मुखे सर्वा पित्तविद्रधिवत्क्रिया।।

अर्थ : रक्त तथा पित्त की अति वृद्धि होने से या विरेचन रक्तमोक्षण आदि उचित चिकित्सा न होने से गुल्म में पाक प्रारम्भ हो जाने पर पित्तज विद्रधि की सभी उपचारों को करे।

पित्तज गुल्म में आहार विधि–

शालिर्गव्याजपयसा पटोली जागलं घृतम्।
धात्रीपरूषकं द्राक्षा खर्जूरं दाडिमं सिता।।
भोज्यं पानेऽम्बु बलया बृहत्याद्यैश्च साधितम्।

अर्थ : पित्तज गुल्म में जड़हन धान का भात, गाय तथा बकरी का दूध, परवल, घृत, आँवला, फालसा, मुनक्का, खजूर, अनार तथा मिश्री भोजन के लिए दें और पीने के लिए बला तथा बृहत्यादिगण के द्रव्यों से विधिवत् पकाया हुआ जल दें।

कफजगुल्मचिकित्सा।

कफज गुल्म की चिकित्सा–

श्लेष्मजे वामयेत्पूर्वमवम्यमुपवासयेत्।।
तिक्तोष्णकटुसंसर्ग्या वर्हिन सन्धुक्षयेततः।

हिगंग्वादिभिश्च द्विगुणक्षारहिगग्वम्लवेत्तसैः।।

अर्थ : कफ जन्य गुल्म में वमन के योग्य रोगी को वमन कराये और वमन के अयोग्य रोगी को उपवास कराये। इसके बाद तिक्त उष्ण तथा कटु द्रव्यों के संयोग से निर्मित संसर्गी (पेया आदि) देकर तथा पूर्वोक्त हिंग्वादि चूर्ण और घृत आदि में दुगुना क्षार, हींग तथा अम्ल वेंत मिलाकर खिलाये और अग्नि को प्रदीप्त करे।

कफज गुल्म में स्वेदन विधि–

निगूढं यदि वोन्नद्धं स्तिमितं कठिनं स्थिरम्।
आनाहादियुतं गुल्मं संशोध्य विनयेदनु।।
घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं कफगुल्मिनाम्।

अर्थ : कफज गुल्म के रोगी का गुल्म यदि निगूढ़ (गम्भीर) या उन्नत, स्तिमित, स्थिर (अचल) तथा आनाह आदि से युक्त हो तो उसपर स्वेदन कर मर्दन करे। इसके बाद क्षार तथा त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच) का चूर्ण मिलाकर पिलाये।

कफज गुल्म मं दशमूलादि घृत–

सव्योषक्षारलवणं सहिगगुबिडदाडिमम्।।
कफगुल्मं जयत्याशु दशमूलशृतं घृतम्।

अर्थ : दशमूल के क्वाथ तथा कल्क से विधिवत् सिद्ध घृत में व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), यवक्षार तथा सेन्धा नमक का चूर्ण एवं हींग, बिडनमक तथा अनारदाना का चूर्ण मिलाकर पान कराने से यह घृत कफज गुल्म को शीघ्र ही जीत लेता है।

भल्लातकघृतम्।

कफज गुल्म में भल्लातकादि घृत–

भल्लातकानां द्विपलं पच्चमूलं पलोन्मितम्।।
अल्पं तोयाढके साध्यं पादशेषेण तेन च।
तुल्यं घृतं तुल्यपयो विपचेदक्षसम्मितैः।।
बिडगहिगगुसिन्धूत्थ–यावशूकशठीबिडैः।
सद्वीपिरास्नायष्टयाह्न–षड्ग्रन्थाकणनागरैः।।
एतद् भल्लातकघृतं कफगुल्महरं परम्।
प्लीहपाण्ड्वामयश्वास–ग्रहणीरोगकासनुत्।।

अर्थ : भिलावा दो पल (100 ग्राम), लघु पंच्चमूल (सरिवन, पिठवन, भटकटैया, बनभंटा तथा गोखरू), प्रत्येक एक–एक पल (प्रत्येक 100 ग्राम), जल एक आढक (4 किलो) में पकावें और चौथाई शेष क्वाथ में घृत तथा घृत के समभाग दूध और वायविडंग, हींग, सेन्धानमक, यवक्षार, कचूर, बिडनमक,

चित्रकमूल, रास्ना, मुलेठी, बालवच, पीपल तथा सोंठ एक–एक कर्ष (प्रत्येक 10 ग्राम) का कल्क मिलाकर विधिवत् घृत सिद्ध करें। यह भल्लातक घृत कफज गुल्म को अच्छी तरह दूर करता है। इसके अतिरिक्त प्लीहा रोग, पाण्डूरोग, श्वास ग्रहणी रोग तथा कास (खांसी) को दूर करता है।

सभी गुल्म में स्वेदन विधि–

ततोऽस्य गुल्मेदेहे च समस्ते स्वेदमाचरेत्।
सर्वत्र गुल्मे प्रथमं स्नेहस्वेदोपपादिते।।
या क्रिया क्रियते याति सा सिद्धि न विरूक्षिते।

अर्थ : पूर्वोक्त घृतों से स्नेहन करने के बाद गुल्म पर तथा समस्त शरीर पर स्वेदन करे। सभी गुल्मों में पहले स्नेहन–स्वेदन करने के बाद जो चिकित्सा की जाती है उससे लाभ होता है और जो विरूक्षित गुल्म में चिकित्सा की जाती है उसमें सफलता नहीं मिलती है।

घटिकायन्त्रप्रयोगः।

गुल्म में घटिका यन्त्र का प्रयोग–

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य गुल्मे शैथिल्यमागते।।
यथोक्तांघटिकां न्यस्येद् गृहीतेऽपनयेच्च ताम्।
वस्त्रान्तरं ततः कृत्वा छित्वा गुल्मं प्रमाणवित्।।
विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभं प्रपीडयेत्।
प्रमज्याद् गुल्ममेवैकं न त्वन्त्रहृदयं स्पृशेत्।।

अर्थ : स्नेहन–स्वेदन द्वारा स्निग्ध एवं स्विन्न शरीर वाले रोगी के गल्म में शिथिलता आ जाने पर यन्त्रादि अध्याय में कहे गये घटिका यन्त्र का प्रयोग करे और घटिका यन्त्र के पकड़ लेने पर उसको हटा दें। इसके बाद उसको वस्त्र के अन्दर कर सूचिका द्वारा छेदन करे। घटिका उचित परिमाण में होना चाहिए जिससे घटिका के मुख में गुल्म आ जाय। इसके बाद विमार्ग (चर्मकार का लकड़ी का बना काष्ठ विशेष), अजपद तथा शीशा जो मिल जाय उससे दबाकर पीड़ित करे और केवल गुल्म को ही मर्दन करे किन्तु आन्त्र एवं हृदय को स्पर्श न करे।

कफज गुल्म में स्वेदन औशध–

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य वा।
श्लेष्मगुल्ममयः पात्रैः सुखोष्णः स्वेदयेत्ततः।।

अर्थ : घटिका यन्त्र प्रयोग के बाद कफज गुल्म के ऊपर तिल एरण्ड, तीसी बीज या सरसों के कल्क का लेप लगाकर थोड़ा गरम लोहे के पात्र से स्वेदन करे।

स्थान विचलित कफज गुल्म में पुनः संशोधन–

एवं च विसृतं स्थानात्कफगुल्मं विरेचनैः।
सस्नेहैर्बसितभिश्चैनं शोधयेद्दाशमूलिकैः।।

अर्थ : पूर्वोक्त प्रकार से अपने स्थान से विचलित कफज गुल्म को स्निग्ध विरेचन औषधों से विरेचन तथा "दाशमूलिक" नामक निरूपण बस्तियों से शोधन करे।

मिश्रकस्नेहः।

विरेचन के लिए मिश्रक स्नेह–

पिप्पल्यामलकद्राक्षाश्यामाद्यैः पालिकैः पचेत्।
एरण्डतैलहविषोः प्रस्थौ पयसि शड्गुणे।।
सिद्धोऽयं मिश्रकः स्नेहो गुल्मिनां स्रंसनं परम्।
वृद्धि–विद्रधि–शूलेषु वातव्याधिषु चाऽमृतम्।।

अर्थ : पीपर, आँवला, मुनक्का तथा काला निशोथ आदि विरेचन द्रव्य एक एक पल (प्रत्येक 50 ग्राम), लेकर उसका कल्क बनावें और एरण्ड तेल एक प्रस्थ (1 किलो), गो घृत एक प्रस्थ (1 किलो) इन सबको तैल घृत से छः गुने जल में विधिवत् पकावें। यह सिद्ध मिश्रक स्नेह गुल्म के रोगियों के लिए अच्छी तरह विरेचन करानेवाला है। वृद्धिरोग, विद्रधि, उदरशूल तथा वात व्याधि में अमृत के समान लाभदायक है।

गुल्म में विविध स्नेह–

पिबेद्वा नीलिनीसर्पिमत्रिया द्विपलीकया।
तर्थव सुकुमाराख्य घृतान्यौदरिकाणि वा।।

अर्थ : अथवा स्थान से प्रचलित गुल्मरोग में नीलिनी घृत दो पल (100 ग्राम की मात्रा में) या सुकुमार घृत अथवा उदररोग चिकित्सा प्रकरण में कहे गये घृतों को पान करे।

दन्तीहरीतक्यः।

विरेचन के लिए दन्ती हरीतकी का प्रयोग–

द्रोणेऽम्भसः पचेद्दन्त्याः पलानां पच्चविशतिम्।
चित्रकस्य तथा पथ्यास्तावतीस्तद्रसे सुते।।
द्विप्रस्थे साधयेत्पूते क्षिपेद्दन्तीसमं गुडम्।
तैलात्पलानि चत्वारि त्रिवृतायाश्च चूर्णतः।
कणाकर्षौ तथा शुण्ठयाः सिद्धे लेहे तु शीतले।
मधु तैलसमं दद्याच्चतुर्जाताच्चतुर्थिकाम्।।
अतो हरीतकीमेकां सावलेहपलामदन्।

सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः।।
गुल्महृद्रोगदुर्नाम–शोफाऽऽनाहगरोदरान्।
कुष्ठोत्क्लेशारुचिप्लीह–ग्रहणीविषमज्वरान्।।
घ्नन्ति दन्तीहरीतक्यः पाण्डुतां च सकामलाम्।

अर्थ : दन्ती मूल पच्चीस पल (1 किलो 250 ग्राम), चित्रक पच्चीस पल (1 किलो 250 ग्राम) तथा हर्रे पच्चीस पल (1 किलो 250 ग्राम) लेकर जल एक द्रोण (16 किलो) में पकावें और दो प्रस्थ (2 किलो) जल शेष रह जाने पर छान लें और हरीतकी को अलग रख लें। इसके बाद गुड़ 25 पल (1 किलो 250 ग्राम) तैल चार पल (200 ग्राम), निशोथ का चूर्ण चार पल (200 ग्राम), पीपर दो कर्ष (20 ग्राम) तथा सोंठ का चूर्ण दो कर्ष (20 ग्राम) तथा हरीतकी मिलाकर अवलेह तैयार कर लें। इसके बाद अवलेह तैयार होकर शीतल हो जाने पर तैल के बराबर मधु छोड़ दे ओर उसमें चार्तुजात (इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर) एक–एक कर्ष (प्रत्येक 10 ग्राम) का चूर्ण मिला दें। इसमें से एक हरीतकी तथा अवलेह एक पल (50 ग्राम) खाने से पुरीष के अतिरिक्त एक प्रस्थ (1 किलो) दोष सुखपूर्वक निकल जाता है और रोगी रोग रहित हो जाता है। यह दन्ती हरीतकी नामक अवलेह गुल्मरोग, हृदयरोग, अर्शरोग, शोथ, आनाह, कृत्रिम विष दोष, कुष्ठ, उत्क्लेश, अरूचि, प्लीहा रोग, ग्रहणी, विषम ज्वर, पाण्डुरोग तथा कामला रोग को नष्ट करता है।

गुल्म रोग में विरेचनार्थ निशोथ चूर्ण–

सुधाक्षीरद्रवं चूर्णं त्रिवृतायाः सुभावितम्।।
कार्षिकं मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वा साधु विरिच्यते।

अर्थ : निशोथ का चूर्ण सेहुँड के दूध की भावना देकर एक कर्ष चूर्ण (10 ग्राम–आ.मा. 4 से 6 ग्राम) की मात्रा में मधु तथा घृत के साथ चाटने से सुखपूर्वक विरेचन होता है।

विरेचन तथा निरूहण योग–

कुष्ठश्यामात्रिवृद्दन्ती–विजयाक्षारगुग्गुलुम्।।
गोमूत्रेण पिबेदेकं तेन गुग्गुलुमेव वा।
निरूहान्कल्पसिद्धयुक्तान् योजयेद् गुल्मनाशनान्।।

गुल्म रोग में क्षार, अरिष्ट तथा अग्नि कर्म–

कृतमूलं महावास्तुं कठिनं स्तिमितं गुरूम्।
गुढमांस जयेद्गुल्मं क्षारारिष्टाग्निकर्मभिः।।
एकान्तरं द्वयन्तर वा विश्रमय्याऽथवा त्र्यहम्।
शरीरदोषबलयोर्वर्धनक्षपणोद्यतः।।

अर्थ : मूल वाला अधिक स्थान में स्थित कठोर, स्पर्श में शीतल, गुरू तथा मांस में स्थित गुल्म को क्षार, अरिष्ट तथा अग्नि कर्म के द्वारा ठीक करने का प्रयत्न करे। क्षारादि कर्म के बाद पुनः एक, दो दिन या तीन दिन रूक कर शरीर के बल को बढ़ाने का तथा दोषों को घटाने का प्रयत्न करे।

गुल्म में विविध क्षारों का निर्देश–

अर्शोऽश्मरीग्रहण्युक्ताः क्षारा योज्याः कफोल्बणे।

अर्थ : अर्श, अश्मरी तथा ग्रहणी रोग में जिन क्षारों का प्रयोग किया जाता है उनका प्रयोग कफ प्रधान गुल्म में करना चाहिए।

गुल्म रोग में क्षारागद योग–

देवदारूत्रिवृद्दन्तीकटुकापच्चकोलकम्।।
स्वर्जिकायावशूकाख्यौ श्रेष्ठापाठोपकुच्चिकाः।
कुष्ठं सर्पसुगन्धां च द्वयक्षांशं पटुपच्चकम्।।
पालिकं चूर्णितं तैल–वसा–दधि–घृताऽऽप्लुतम्।
घटस्यान्तः पचेत्पक्वमग्निवर्णे घटे च तम्।।
क्षारं गृहीत्वा क्षीराज्यतक्रमद्यादिभिः पिबेत्।
गुल्मोदावर्तवर्ध्मार्शो–जठरग्रहणीकृमीन्।।
अपसमारगरोन्माद–योनिशुक्रामयाश्मरीः।
क्षारागदोऽयं शमयेद्विषं चाखुभुजगजम्।।

अर्थ : देवदारू, निशोथ, दन्ती मूल, कुटकी, पंच्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), सज्जीखार, यवक्षार, श्रेष्ठा, त्रिफला, (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), पाठा मंगरैल, कूट तथा सर्पगन्धा, दो–दो अक्ष (प्रत्येक 20 ग्राम) और पटु पंच्चक (सेन्धा नमक, बिड नमक, सौवर्चल नमक, सांभर तथा सामुद्र नमक) एक–एक पल (प्रत्येक 50 ग्राम) इन सब का चूर्ण बनाकर तथा तैल, वसा, दही तथा घृत की भावना देकर घड़ा के अन्दर रख कर पकावें। घड़ा के अग्नि वर्ण (लाल) हो जाने पर शीतल कर क्षार निकाल लें। इसके बाद उस क्षार को क्षीर, घृत, मट्ठा आदि के साथ पान करे। यह क्षारागद गुल्म, उदावर्त, वर्ध्म (आन्त्रवृद्धि), अर्श, उदर विकार, ग्रहणी विकार, कृमि रोग, अपस्मार, कृत्रिम विष जन्य उपद्रव, उन्माद, योनि रोग तथा शुक्र रोग, मूषक विष तथा सर्प विष को शान्त करता है।

कफज गुल्म में क्षार प्रयोग का फल–

श्लेष्माणं मधुरं स्निग्धं रसक्षीरघृताशिनः।
छित्त्वा भित्त्वाऽऽशयं क्षारः क्षारत्वात्पातयतयधः।।

अर्थ : दूध तथा घृत खाने वाले व्यक्ति के क्षार क्षरणशील होने के कारण

मधु तथा स्निग्ध कफ जन्य गुल्म को छेदना तथा भेदन कर उदर से बाहर निकाल देता है।

गुल्म रोग में आसव तथा अरिष्ट का प्रयोग–

मन्देऽग्नावरूचौ सात्म्यैर्मद्यैः सस्नेहमश्नताम्।
योजयेदासवारिष्टान्निगदान् मार्गशुद्धये।।

अर्थ : गुल्म रोग में अग्नि के मन्द हो जाने पर तथा अरूचि रहने पर सात्म्य मद्यों के साथ स्नेहयुक्त भोजन करने वाले व्यक्तियों के मार्ग शुद्धि के लिए आसव–अरिष्ट आदि निगद का प्रयोग करे।

अन्नपानमाह–

गुल्म रोग में भोजन तथा पान–

शालयः शष्टिका जीर्णाः कुलत्था जागलं पलम्।
चिरबिल्वाग्नितर्कारीयवानीवरणागकुराः।।
शिग्रोस्तरूणमूलानि बालं शुष्कं च मूलकम्।
बीजपूरकहिगग्वम्लवेतसक्षारदाडिमम्।।
त्र्योषं तक्रं घृतं तैलं भक्तं पानं तु वारूणी।
धान्यम्लं मस्तु तक्रं च यवानीबिडंचूर्णितम्।।
पच्चमूलशृतं वारि जीर्णं मार्द्वीकमेव वा।

अर्थ : गुल्म रोग में पुराने जड़हन धान का भात, सौंठी धान का भात, कुरथी, करंज्ज, चित्रक, अरणी, अजवायन, वरूण के कोमल अंकुर, सहिजन की फली, तरूण बेल, बाल तथा सूखी मूली का क्वाथ, बिजौरा नींबू, हींग, अम्ल बेंत, क्षार, अनार, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), मट्ठा, घृत, तैल आदि का भोजन में यथा योग्य प्रयोग करें तथा वारूणी, धान्याम्ल (कांज्जी), मस्तु, (दही का तोड़) तथा मद्य इन सबमें अजवायन तथा बिडनमक का चूर्ण मिलाकर पान करें। अथवा बृहत् पंच्चमूल का विधिवत् पका जल तथा पुराना मृद्वीकासव पान करे।

गुल्म रोग में सुरा आदि का प्रयोग–

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकाजाजिसैन्धवैः।।
सुरा गुल्मं जयत्याशु जागलश्च विमिश्रितः।

अर्थ : पीपर, पिपरा मूल, चित्रक, जीरा तथा सेन्धानमक इन सबका चूर्ण मिलाकर पान करें तथा पूर्वोक्त द्रव्यों को मिलाकर तथा सेवन करने से गुल्म रोग को शीघ्र ही दूर करता है।

कफज गुल्म में दाह कर्म–

वमनैर्लगंघनैः स्वेदैः सर्पिःपानैर्विरेचनैः।।

बस्तिक्षारासवारिष्टैर्गौल्मिकैः पथ्यभोजनैः।
श्लैष्मिको बद्धमूलत्वाद्यदि गुल्मो न शाम्यति।।
तस्य दाहं हृते रक्ते कुर्यादन्ते शरादिभिः।

अर्थ : कफज गुल्म बद्धमूल होने के कारण पूर्वोक्त वमन, बंधन, स्वेदन, घृतपान, विरेचन, बस्ति कर्म, क्षार प्रयोग, आसवारिष्ट सेवन, गुल्म में उपयोगी पथ्य भोजन से यदि गुल्म न शान्त हो तो रक्तमोक्षण के बाद अन्त में लोहे की शलाका से उसका दाह करें।

दाहविधिः—

अग्नि कर्म विधि—

अथ गल्मं सपर्यन्तं वाससाऽन्तरितं भिषक्।।
नाभिबस्त्यन्त्रहृदयं रोमराजीं च वर्जयन्।
नातिगाढं परिमृशेच्छरेण ज्वलताऽथवा।।
लोहेनारणिकोत्थेन दारूणा तैन्दुकेन वा।
ततोऽग्निवेगे शमिते शीतैर्व्रण इव क्रिया।।

अर्थ : अग्नि कर्म के समय चिकित्सा गुल्म को वस्त्र से चारों ओर से ढककर, नाभि, बस्ति, हृदय तथा रोम राजि को बचाते हुए जलती हुई लोहे की शलाका से हल्का ऊपर स्पर्श करे। अथवा अरणी के जलते हुए लकड़ी से या तेंदू के जलते लकड़ी से हल्का स्पर्श करें। इसके बाद अग्नि के वेग के शान्त हो जाने पर शीतल उपचारों से व्रण की तरह चिकित्सा करें।

आम दोषज गुल्म की चिकित्सा—

आमान्वये तु पेयाद्यैः सन्धुक्ष्याग्निं विलङ्घिते।
स्वं स्वं कुर्यात्क्रमं मिश्रं मिश्रदोषे च कालवित्।।

अर्थ : आम दोष से सम्बन्धित गुल्म रोग में लगंन करने के बाद पेया विलेपी आदि से अग्नि को प्रदीप्त कर वातादि दोषों के अनुसार चिकित्सा करे। वातादि दोषों के साथ—साथ प्रकुपित होने पर मिश्र चिकित्सा करे।

रक्तज गुल्म रोग में तिलादि क्वाथ—

तिलक्वाथो घृतगुडव्योषभार्गीरजोन्वितः।
पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषितः।।

अर्थ : रक्तज गुल्म में एवं स्त्री के रजःस्राव के नष्ट हो जाने पर घृत, गुड़, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) तथा बभनेटी का चूर्ण पान कराये।

अर्थ : भांरगी (बभनेटी), पीपर, करंज्ज की छाल, पिपरा मूल तथा देवदारू समभाग इन सबका चूर्ण तिल के क्वाथ के साथ पीनें से गुल्म की वेदना को दूर करता है।

गुल्म रोग में प्लासक्षारादि स्नेह—

पलाशक्षारपात्रे द्वे द्वे पात्रे तैलसर्पिषोः।
गुल्मशैथिल्यजननीं पक्त्वा मात्रां प्रयोजयेत्।।

अर्थ : पलासक्षार दो आढक (8 किलो), तैल एक आढक (4 किलो) तथा घृत एक आढक (4 किलो) इन सबको एक साथ पकाकर मात्रापूर्वक प्रयोग करे। यह स्नेह गुल्म को शिथिल करने वाला है।

योनि विरेचन विधि–

न प्रभिद्यते यद्येवं दद्याद्योनिविरेचनम्।
क्षारेण युक्तं पललं सुधाक्षीरेण वा ततः।।
ताभ्यां वा भावितान्दद्याद्योनौ कटुकमत्स्यकान्।
वराहमत्स्यपित्ताभ्यां नक्तकान्वा सुभावितान्।।
किण्वं वा सगुडक्षारं दद्याद्योनौ विशुद्धये।
रक्तपित्तहरं क्षारं लेहयेन्मधुसर्पिषा।।
लशुनं मदिरां तीक्ष्णां मत्स्यांश्चास्यै प्रयोजयेत्।
बस्तिं सक्षीरगोमूत्रं सक्षारं दाशमूलिकम्।।
अवर्तमाने रूधिरे हितं गहुल्मप्रभेदनम्।
यमकाभ्यक्तदेहायाः प्रवृत्ते समुपेक्षणम्।।
रसौदनस्तथाऽऽहारः पानं च तरूणी सुरा।

अर्थ : यदि पूर्वोक्त प्रकार से गुल्म का भेदन न हो सके तो योनि विरेचन दे। योनि विरेचन में यवक्षार तथा मांस दोनों को एक में मिलाकर तथा बत्ती बनाकर योनि में प्रवेश करे। अथवा सूअर तथा मछली के पित्त से प्रभावित कपड़े की बत्ती बनाकर योनि में प्रवेश करे। अथवा गुड़ तथा जवाखार मिलाकर किण्व (सुराबीज) की बत्ती योनि में रक्खें। इन उपचारों से योनि की शुद्धि हो जाती है। अर्थात् गुल्म भेदन हो जाता है। इन उपचारों के साथ रक्तपित्त नाशक क्षार को मधु तथा घृत के साथ चटाये और लहसुन, खिलायें। इसके बाद दशमूल का क्वाथ में दूध, गोमूत्र तथा यवक्षार मिलाकर निरूहण बसित दे। इन उपचारों से यदि रक्त न निकले तो गुल्म का प्रभेदनक करे। इस प्रकार गुल्म के प्रभेदन हो जाने से रक्त के प्रवृत्त हो जाने पर घृत तथा तैल का अभ्यगं देकर उपेक्षा करे। अर्थात् रक्त निकलने दें और भात भोजन में दे तथा कच्ची सुरा पान कराये।

□□□□□

अष्टम् अध्याय

अथाऽत उदरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः।।

अर्थ : गुल्म चिकित्सा व्याख्यान करने के बाद उदररोग चिकित्सा का व्याख्यान करेंगे ऐसा आत्रेयादि महर्षियों ने कहा था।

उदर रोग में चिकित्सा सूत्र–

दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतोमार्गनिरोधनात्।
सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत्।।
पाययेत्तैलमैरण्डं समूत्रं सपयोऽपि वा।
मासं द्वौ वाऽथवा गव्यं मूत्रं माहिषमेव वा।
पिबेद् गोक्षीरभुक्स्याद्वा करभीक्षीरवर्तनः।
दाहानाहातितृण्मूर्च्छापरीतसतु विशेषतः।।

अर्थ : दूषित मलों के अधिक मात्रा में एकत्र हो जाने से तथा स्रोतसों के मार्ग अवरूद्ध हो जाने से उदर रोग होता है, अतः दोषों को निकालने के लिए नित्य विरेचन कराना चाहिए। एक माह या दो माह एरण्ड के तैल में गोमूत्र तथा दूध मिलाकर पिलाये। अथवा गाय का मूत्र या भैंस का मूत्र पान करे। अथवा गाय के दूध या ऊँटनी का दूध पीकर रहे। विशेषकर दाह, आनाह अधिक प्यास तथा मूर्च्छा, पीड़ित व्यक्ति पूर्वोक्त विरेचन तथा आहार का सेवन करे।

उदर रोग में स्नेहन विधि–

रूक्षाणां बहुवातानां दोषसंशुद्धिकांक्षिणाम्।
स्नहेनीयानि सर्पींषि जठरघ्नानि योजयेत्।।
शट्पलं दशमूलाम्बु–मस्तुद्वयाढकसाधितम्।

अर्थ : रूक्ष प्रकृति तथा अति प्रकुपित वायु वाले एवं दोषों की शुद्धि कराने की इच्छा वाले स्नेहन करने के योग्य रोगी को उदर रोग नाशक घृत का प्रयोग करे। उदर रोग में दशमूल का क्वाथ दो आढक (8 किलो) तथा दही का तोड़ (4 किलो) एक आढक में पुनः सिद्ध षट्पल घृत का प्रयोग करें।

उदररोग में नागरादि घृत तैल–

नागरं त्रिपलं प्रसथं घहृततैलात्तथाऽऽढकम्।।
मस्तुनः साधयित्वैतत्पिबेत्सर्वोदरापहम्।

कफमारूतसम्भूते गुल्मे च परमं हितम्।।

प्रकार बार–बार पीने से यह चूर्ण सभी प्रकार के उदर रोगों को ओर जल भरे हुए उदर रोग (जलोदर) को भी नष्ट करता है।

उदर रोग में गवाक्ष्यादि चूर्ण–

गवाक्षीं शाङिनीं दन्तीं तिल्वकस्य त्वचं वचाम्।
पिबेत्कर्कन्धुमृद्वीकाकोलाम्भोमुत्रसीधुभिः।।

अर्थ : इन्द्रायण के सूखे फल, शंखिनी (शंख पुष्पी), दन्ती मूल, लोध की छाल तथा वच समभाग इन सबों के चूर्ण को बेर के रस, मुनक्का के रस, बड़ी बेर के रस, गोमूत्र तथा सिरका के साथ पान करे।

नारायणचूर्णः।

उदर रोग में नारायण चूर्ण–

यवानी हपुषा धान्यं शतपुष्पोपकुञ्चिका।
कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा भाठी वचा।।
चित्रकाजाजिकं व्योषं स्वर्णक्षीरी फलत्रयम्।
द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम्।।
विडगं च समांशानि दन्त्या भागत्रयं तथा।
त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला च चतुर्गुणा।।
एश नारायणों नाम चूर्णो रोगगणापहः।
नैनं प्राप्याऽभिवर्धन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः।।
तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना।
आनाहवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया।।
दधिमण्डेन बिट्संगं दाडिमाम्भोभिरर्शसैः।
परिकर्ते सवृक्षाम्लैरूष्णाम्बुभिरजीर्णके।।
भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे।
हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुशठे मन्देऽनले ज्वरे।।
दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे।
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम्।।

अर्थ : अजवायन, हाऊबेर, धनियाँ, सौंफ, मंगरैल, कालाजीरा, पिपरामूल, अजगन्धा, कचूर, वच, चित्रक, जीरा, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), सत्यानासी के बीज, फलत्रय (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), यवक्षार, सज्जीक्षार, पुष्कर मूल, कूट, लवण पंचचक (सेन्धा नमक, सौवर्चल नमक, बिडनमक, साँभर नमक, सामुद्र नमक) तथा वायविडंग समभाग, दनती मूल तीन भाग, निशोथ तथा इन्द्रायण दो–दो भाग, सप्तपर्ण का छाल चार भाग इन सबका चूर्ण नारायण चूर्ण कहा जाता है। यह चूर्ण सभी रोग समूहों को दूर करता है। इस चूर्ण को सेवन

करने से रोग बढते नहीं है, जैसे विष को पाकर असुर नहीं बढ़ते। इस चूर्ण को उदर रोग से पीड़ित व्यक्ति मट्ठा के साथ, गुल्म रोग से पीड़ित बेर के रस के साथ, आनाह वात में मद्य के साथ, वात राग में प्रसन्ना के साथ, विबन्धा (मलावरोध) में दधिमण्ड के साथ, अर्श का रोगी अनार के रस के साथ, परिकर्तिका रोग में वृक्षाम्ल रस के साथ, अजीर्ण में गरम जल के साथ और भगन्दर, पाण्डुरोग, कास, श्वास, जलग्रह, ह्रद्रोग, ग्रहणी विकार, कुष्ठरोग, मन्दाग्नि, ज्वर, दन्तविष, मूलविष, गरविष तथा कृत्रिम विष में रोगानुसार अनुपान के साथ प्रयोग करे। यह चूर्ण विरेचन के लिए स्नेहन के द्वारा कोष्ठ की शुद्धि हो जाने पर पान करना चाहिए।

हपुषादिकं चूर्णम्।

उदर रोग में हपुषादि चूर्ण–

हपुषां काञ्चनक्षीरीं त्रिफलां नीलिनीफलम्।
त्रायन्तीं रोहिणीं तिक्तां सातलां त्रिवृतां वचाम्।।
सैन्धवं काल–लवणं पिप्पलां चेति चूर्णयेत्।
दाडिमत्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकैः।।
पेयोऽयं सर्वगुल्मेषु प्लीह्नि सर्वोदरेषु च।
श्वित्रे कुष्ठेष्वजरके सदने विषमेऽनले।।
शोफार्शः पाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके।
वातपित्तकफांश्चाशु विरेकेण प्रसाधयेत्।।

अर्थ : हाऊवेर, सत्यानासी के बीज, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) नील के फल, त्रायमाणा, कुटकी, सप्तपर्ण, निशोथ, वच, सेन्धा नमक, काला नमक तथा पीपर समभाग इन सबका चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को अनार का रस, त्रिफला का क्वाथ, गोमूत्र तथा गरम जल से सभी प्रकार के गुल्म रोग में, प्लीहा वृद्धि, सभी उदर राग, श्वित्र, कुष्ठ रोग, अजीर्ण, अवसाद, विषमाग्नि, शोथ, अर्श, पाण्डु रोग, कामला तथा हलीमक में पान करे। यह चूर्ण विरेचन के द्वारा वात, पित्त तथा कफ को शान्त करता है।

उदर रोग में नीलिन्यादि चूर्ण–

नीलिनीं निचुलं व्योषं क्षारो लवणपञ्चकम्।
चित्रकं च पिबेच्चूर्णं सर्पिषोदरगुल्मनुत्।।

अर्थ : नील के बीज, वेतस फल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), यवक्षार, लवण पंच्चक (सेन्धा, सौवर्चल, बिड़, साँभर, सामुद्र) तथा चित्रक समभाग इन सबका चूर्ण धृत के साथ सेवन करने से उदर रोग तथा गुल्मरोग को दूर करता है।

उदर रोग में शोधनान्तर दुग्ध का प्रयोग–

पूर्वच्च पिबेद्दुग्धं क्षामः शुद्धोऽन्तरान्तरा।
कारभं गव्यमाजं वा दद्यादात्ययिके गदे।।
स्नेहमेव विरेकार्थे दुर्बलेभ्यो विशेषतः।

अर्थ : शोधन के बाद दुर्बल तथा कृश रोगी बीच–बीच में गाय, बकरी या ऊंटनी का दूध पान करे। आत्यधिक रोग में विशेषकर दुर्बल व्यक्ति के लिए स्नेह विरेचन का प्रयोग करे।

हरीतकीघृतम्।

उदर रोग में हरीतकी घृत–

हरीतकीसूक्ष्मरजःप्रस्थयुक्तं घृताढकम्।।
अग्नौ विलाप्य मथितं खजेन यवपल्लके।
निधापयेत्ततो मासादुद्धृतं गालितं पचेत्।।
हरीतकीनां क्वाथेन दध्ना चाम्लेन संयुतम्।
उदरं गरमष्ठीलामानाहं गुल्मविद्रधिम्।।
हन्त्येतत्कुष्ठमुन्मादमपस्मारं च पानतः।

अर्थ : हरीतकी एक प्रस्थ (1 किलो) का महीन चूर्ण तथा घृत एक आढक (4 किलो) लेकर आग पर पिघलावे और मथनी से मथकर यव के ढेर में एक महीने रक्खे। इसके बाद निकाल कर छान लें और हर्रे के क्वाथ तथा खट्टा दही के साथ पकावे। यह घृत पीने से उदररोग, गरविष, अष्ठीला ग्रन्थि की वृद्धि, आनाह, गुल्म रोग, विद्रधि रोग, कुष्ठ रोग, उन्माद तथा अपस्मार को नष्ट करता है।

उदर रोग में स्नुही क्षीर घृत–

स्नुक्क्षीरयुक्ताद्गोक्षीराच्छृतश्शीतात्खजाऽऽहतात्।।
यज्जातमाज्यं स्नुक्क्षीरसिद्धं तच्च तथागुणम्।
क्षीरद्रोणं सुधाक्षीरप्रस्थार्धेन युतं दधि।।
जातं मथित्वा तत्सर्पिस्त्रिवृत्सिद्धं च तद्गुणम्।
तथा सिद्धं घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुणे। पिबेत्।।
स्नुक्क्षीरपलकल्केन त्रिवृताषट्पलेन च।
एशां चाऽनु पिबेत्पेयां रसं स्वादु पयोऽथवा।।
घृते जीर्णे विरिक्तश्च कोष्णं नागरसाधितम्।
पिबेदम्बु ततः पेयां ततो यूषं कुलत्थजम्।।
पिबेद्रूक्षस्त्र्यहं त्वेवं भूयो वा प्रतिभोजितः।
पुनः पुनः पिबेत्सर्पिरानुपूर्व्याऽनयैव च।।
घृतान्येतानि सिद्धानि विदध्यात्कुशलो भिषक्।
गुल्मानां गरदोषाणामुदराणां च शान्तये।।

अर्थ : सेहुँड़ का दूध एक भाग, गाय का दूध चार भाग इन दोनों को मिलाकर

पकावें और शीतल हो जाने पर मथनी से मथकर जो घृत निकलता है उस घृत में चौगुना सेहुँड़ का दूध मिलाकर पकावे। यह स्नुहीघृत हरीतकी घृत के समान गुण वाला है। अथवा दूध एक द्रोण (16 किलो), सेहुँड़ का दूध आधा प्रस्थ (500 ग्राम) इन दोनों को पकाकर दही बनावें और मथनी से मथकर घृत निकाले और घृत के चतुर्थांश निशोथ का कल्क मिलाकर पुनः विधिवत् घृत सिद्ध करें। यह घृत भी पूर्वोक्त हरीतकी घृत के समान गुणवाला है। अथवा–घृत एक प्रस्थ (1 किलो) दूध आठ किलो मे सेहुँड़ का दूध एक पल (50 ग्राम) तथा निशोथ 6 पल (300 ग्राम) का कल्ल मिलाकर विधिवत् घृत सिद्ध करें। यह घृत हरीतकी घृत के समान गुणवाला है। इन घृतों को पीने के बाद पेया, अथवा मीठा दूध पान करे। घृत के पच जाने पर या विरेचन हो जानेपर सोंठ मिलाकर विधिवत् पकाये थोड़ा गरम जल को पान करें। इसके बाद पेया तदनन्तर कुरथी का यूष पान करे। इस क्वाथ को पीने के बाद भी रोगी का उदर जब रूक्ष रहे तब तीन दिन तक भोजन कराने के बाद पुनः घृत पिलाये। इसी प्रकार आनुपूर्वी क्रम से बार–बार घृत पान करे। इन सिद्ध घृतों को कुशल चिकित्सक प्रयोग करें। इस घृत को गुल्म रोग, गर दोष तथा उदर रोग की शान्ति के लिए पान करें।

उदर रोग में पीलु घृत–

पीलुकल्कोपसिद्धं वा घृतमानाहभेदनम्।
तैल्वकं नीलिनीसर्पिः स्नेहं वा मिश्रकं पिबेत्।।
हृतदोषः क्रमादश्नन् लघुशाल्योदनं प्रति।

अर्थ : अथवा उदर रोग में आनाह को दूर करने के लिए पीलु वृक्ष के फल के कल्क से सिद्ध घृत, तिल्वक घृत नलिनी घृत या मिश्रक स्नेह पान करें। इस प्रकार दोनों के निकल जाने पर क्रमशः पेया–विलेपी आदि खाने के बाद फिर जड़हन धान के चावल का भात थोड़ा–थोड़ा भोजन करें।

उदर रोग में हरीतकी का प्रयोग–

उपयुज्जीत जठरी दोषशेषनिवृत्तये।।
हरीतकीसहस्र वा गोमूत्रेण पयोऽनुपः।
सहस्रं पिप्पलीनां वा स्नुक्क्षीरेण सुभावितम्।।
पिप्पलीं वर्धमानां वा क्षीराशी वा शिलाजतु।
तद्वद्वा गुग्गुलुं क्षीरं तुल्यार्द्रकरसं तथा।।

अर्थ : पूर्वोक्त प्रकार से उदर रोग पीड़ित व्यक्ति विरेचन के बाद भी अवशिष्ट दोषों की निवृत्ति के लिए एक हजार हरीतकी गोमूत्र के साथ सेवन करे और केवल भोजन में दूध पान करे। अथवा सेहुँड़ के दूध से प्रभावित एक हजार

पीपर गोमूत्र के साथ भक्षण करे। अथवा वर्द्धमान पिप्पली योग का सेवन करें। अथवा शिलाजीदत का सेवन करें। अथवा उसी प्रकार गुग्गुल का सेवन करें और केवल दूध पीवे। अथवा दूध में समान भाग अदरक का रस मिलाकर पान करे।

उदर रोग में चित्रकादि कल्क—

चित्रकाऽमरदारुभ्यां कल्कं क्षीरेण वा पिबेत्।
मासं युक्तस्तथा हस्तिपिप्पलीविश्वभेषजम्।।

अर्थ : चित्रक तथा देवदारू का कल्क दूध के साथ पान करें। अथवा गज पीपर तथा सोंठ का कल्क दूध के साथ एक मास तक निरन्तर पान करें।

उदर रोग में विडंगादि कल्क—

विडगं चित्रको दनती चव्यं व्योषं च तैः पयः।
कल्कैः कोलसमैः पीत्वा प्रवृद्धमुदरं जयेत्।।

अर्थ : वायविडंग, चित्रक, दन्तीमूल, चव्य, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) समभाग इन सबका कल्क एक कोल (6 ग्राम) की मात्रा में दूध के साथ पान कर प्रबल उदर रोग को दूर करे।

उदर रोग में सेहुँड़ के दूध का प्रयोग—

भोज्यं भुञ्जीत वा मासं स्नुहीक्षीरघृतान्वितम्।
उत्कारिकां वा स्नुक्क्षीर–पीतपथ्याकणा–कृताम्।।

अर्थ : अथवा उदर रोग में सेहुँड़ के दूध से विधिवत् सिद्ध घृत मिलाकर (स्नुही क्षीर घृत) एक मास तक भोजन करें। अथवा सेहुँड़ के दूध से प्रभावित हर्रे तथा पीपर का चूर्ण मिलाकर बनायी गयी उत्कारिका उलटा (चिल्हा) भोजन करे।

उदर रोग में बिल्वक्षार तैल—

पार्श्वशूलमुपस्तम्भं ह्रद्ग्रहं च समीरणः।
यदि कुर्यात् ततस्तैलं बिल्वक्षारन्वितं पिबेत्।।
पक्वं वा टिण्टकबलापलाशतिलनालजैः।
क्षारैः कदल्यपामार्ग–तर्कारीजैः पृथक्कृतैः।।

अर्थ : यदि उदर रोग में वात प्रकोप से पार्श्व शूल, पार्श्व स्तम्भ तथा ह्रदय का अकड़न हो तो बेल का क्षार मिलाकर तैलपान करे। अथवा सोनापाठा, बला, पलास, तिलनाल, केला, अपामार्ग तथा अरणी के क्षारोंसे अलग–अलग पकाया हुआ तैल पान करे।

उदर रोग में एरण्ड तैल—

कफे वातेन पित्ते वा ताभ्यां वाऽप्यावृतेऽनिले।
बलिनः स्वौषधयुतं तैलमेरण्डजं हितम्।।

अर्थ : बलवान् उदर रोगी के वात से कफ के आवृत होने पर या पित्त के आवृत होने अथवा कफ एवं पित्त से वायु के आवृत होने पर आवरक

दोषनाशक औषधों से युक्त एरण्ड तैल हितकर होता है।

उदर रोग में देवदार्वादि लेप–

देवदारूपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः।
साश्वकर्णैः सगोमूत्रैः प्रदिहयादुदरं बहिः।।

अर्थ : देवदारू, पलास फूल, मदार का फूल, गजपीपर, सहिजन, अश्वकार्ण (साखू) इन सबको गोमूत्र के साथ पीसकर उदर के बाहर लेप करे।

उदर रोग में सेंचन–

वृश्चिकालीवचाशुण्ठीपच्चमूलपुनर्नवात्।
वर्षाभूधान्यकुश्ठाच्च क्वाथैर्मूत्रैश्च सेचयेत्।।

अर्थ : वृश्चिकाली (विछआ–काक नासा), वच, सोंठ, पंच्चमूल (बेल, गम्भारी, सोना पाठा, अरणी, पाढल) श्वेत पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, धनिया तथा कूट समभाग इन सब के क्वाथ में गोमूत्र में मिलाकर उदर के ऊपर सींचे।

उदर रोग में वस्त्र वेष्टन–

वरिक्तं म्लानमुदरं स्वेदितं साल्वणादिभिः।
वाससा वेष्टयेदेवं वायुर्नाऽऽध्मापयेत्पुनः।।

अर्थ : विरेचन से उदर के मुलायम होने पर साल्वण स्वेदन योगों द्वारा स्वेदन कर वस्त्र से उदर को आबेष्टित कर दें। इनसे वायु आध्मान नहीं उत्पन्न करता है।

उदर रोग में निरूहण वस्ति–

सुविरिक्तस्य यस्य स्यादाध्मानं पुनरेव तम्।
सुस्निग्धैरम्ललंवणैर्निरूहैः समुपाचरेत्।।

अर्थ : जिस व्यक्ति के अच्छी तरह विरेचन होने पर भी पुनः आध्मान रहें उसको स्नेह मिला हुआ अम्ल एवं लवण द्रव्य मिश्रित निरूहण वस्ति के द्वारा उपचार करे।

उदर रोग में तीक्ष्ण वस्ति–

सोपस्तम्भोऽपि वा वायुराध्मापयति यं नरम्।
तीक्ष्णाः सक्षारगोमूत्राः शस्यन्ते तस्य वस्तयः।।

अर्थ : अथवा उपचार करने पर भी रूका हुआ वायु जिस पुरूष को आध्मान उत्पन्न करे उसको तीक्ष्ण क्षार तथा गोमूत्र युक्त वस्ति का प्रयोग लाभदायक होता है।

उदर चिकित्सा का उपसंहार–

इति सामान्यतः प्रोक्ताः सिद्धा जठरिणां क्रियाः।

अर्थ : इस प्रकार उदररोगी की सिद्ध चिकित्सा सामान्यतः कही गयी है।

वातोदर की चिकित्सा–

वातोदरेऽथ बलिनं विदार्यादिशृतं घृतम्।।

पाययेत्तु ततः स्निग्धं स्वेदितागं विरेचयेत्।
बहुशस्तैल्वकेनैनं सर्पिषा मिश्रकेण वा।।
कृते संसर्जने क्षीरं बलार्थमवचारयेत्।
प्रागुत्क्लेशान्निवर्तेत बले लब्धे क्रमात्पयः।।
यूशै रसैर्वा मन्दाम्ल–लवणैरेधितानलम्।
सोदावर्तं पुनः स्निग्धं स्विन्नमास्थापयेत्ततः।।
तीक्ष्णाऽधोभागयुक्तेन दाशमूलिकबस्तिना।

अर्थ : वातोदर रोग में बलवान् रोगी को विदारी गन्धादिगण के द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध घृत पान कराये। इसके बाद स्निग्ध एवं स्वेदित शरीर वाले व्यक्ति को तैल्वक घृत या मिश्रक घृत से अनेक बार विरेचन कराये। विरेचन कराने के बाद बल बढ़ाने के लिए दूध पिलाये। उबकाई आने के पहले बल की प्राप्ति हो जाने पर दूध को बन्द कर दे। इसके बाद मूँग का यूष या मांस रस में थोड़ा अम्ल तथा नमक मिलाकर पिलाने से अग्नि के बढ़ जाने पर तथा उदावर्त होने पर पुनः स्नेहन–स्वेदन कर तीक्ष्ण विरेचक द्रव्यों के साथ दाशमूलिक वस्ति के द्वारा आस्थापन बस्ति दें।

वातोदर में अनुवासन वस्ति–

तिलोरूबूकतैलेन वातघनाम्लश्रृतैन च।।
स्फुरणाक्षेपसन्ध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्तिषु।
रूक्षं बद्धशकृद्वातं दीप्ताग्निमनुवासयेत्।।
अविरेच्यस्य शमना बसितक्षीरघृतादयः।

अर्थ : उदर रोग में स्फुरण, आक्षेपण, सन्धि, अस्थि, पार्श्व, पृष्ठ तथा त्रिकास्थि में वेदना होने पर तिल तैल तथा एरण्ड तैल को वातनाशक द्रव्य तथा अम्ल वर्ग के द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध कर रूक्ष प्रकृति वाले मल तथा वात विबन्ध वाले एवं दीप्ताग्नि व्यक्ति को अनुवासन बस्ति दे। जो विरेचन के योग्य न हो अर्थात् दुर्बल हो जाने पर शामक बस्ति, क्षीर तथा घृत का प्रयोग करे।

सबल पित्तोदर रोग की चिकित्सा–

बलिनं स्वादुसिद्धेन पैत्ते संस्नेहय सर्पिषा।।
श्यामात्रिमण्डीत्रिफलाविपक्वेन विरेचयेत्।
सितामधुधृताढयेन निरूहोऽस्य ततो हितः।।
न्यग्रोधादिकषायेण स्नेहबस्तिश्च तच्छृतः।

अर्थ : पित्तजन्य उदर रोग में बलवान् रोगी को स्वादु (मधुर) वर्ग के द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध घृत से स्नेहन कर काला निशोथ तथा त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) इन द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध घृत से विरेचन कराये। इसके बाद न्यग्रोधादिगण के कषाय में मिश्री, मधु तथा घृत मिलाकर निरूहण बस्ति दे

और न्यग्रोधादि गण के द्रव्यों से सिद्ध घृत का स्नेह बस्ति दे।

दुर्बल पित्तोदर रोगी की चिकित्सा–

दुर्बलं त्वनुवास्यादौ शोधयेत्क्षीरबसितभिः।।
जाते त्वग्निबले स्निग्धं भूयो भूयो विरेचयेत्।
क्षीरेण सत्रिवृत्कल्केनोरुबूकश्रृतेन तम्।।
सातलात्रायमाणाभ्यां श्रृतेनाऽऽरग्वधेन वा।

अर्थ : दुर्बल पित्त जन्य रोगी को पहले अनुवासन वस्ति देकर क्षीर बसित के द्वारा शोधन करे और अग्नि के बलवान् होने पर स्नेहन द्वारा स्निग्ध व्यक्ति को बार–बार निशोथ के कल्क से विधिवत् सिद्ध दूध या सप्तपर्ण एवं त्रायमाणा के कल्क से सिद्ध दूध अथवा अमल ताल के कल्क से सिद्ध दूध से विरेचन कराये।

कफोदर रोगी की चिकित्सा–

वत्सकादिविपक्वेन कफे संस्नेहय सर्पिषा।
स्विन्नं सु क्षीरसिद्धेन बलवन्तं विरेचितम्।।
संसर्जयेत्कटफक्षारयुक्तैरन्नैः कफापहैः।
मूत्रत्र्यूषणतैलाढयो निरूहोऽस्य ततो हितः।।
मुष्ककादिकषायेण स्नेहबसितश्च तच्छृतः।
भोजनं व्योषदुग्धेन कौलत्थेन रसेन वा।।

अर्थ : कफ जन्य उदर रोग में वत्सकादिगण के द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध घृत से स्नेहन कर उपयुक्त स्वेदन द्रव्यों से स्विन्न एवं उचित विरेचन द्रव्यों से विरेचित बलवान उदर के रोगी को कटु एवं क्षार आदि कफनाशक द्रव्यों से मिश्रित पेया, विलेपी तथा अन्नों से संसर्जन कर्म करें। इसक बाद मुष्कादिगण के क्वाथ, गोमूत्र, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच) तथा तैल मिलाकर निरूहण बस्ति दें और उस मुष्ककादि गण के द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध घृत का स्नेह बस्ति (अनुवासन बस्ति) दें। तदनन्तर व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) से विधिवत् सिद्ध दूध के साथ भोजन दे अथवा कुरथी के यूष के साथ भोजन दे।

कफोदर में अरिष्ट का प्रयोग–

स्तैमित्यारूचिहृल्लासैर्मन्देऽग्नौ मद्यपाय च।
दद्यादरिष्टान् साराश्च कफस्त्यानस्थिरोदरे।।

अर्थ : यदि कफोदर में स्तैमित्य, अरूचि, उल्लास (उबकाई) तथा मन्दाग्नि होने पर मद्यपी रोगी के लिए अरिष्ट दे और कफ की अधिकता से उदर स्त्यान (चिपचिपा) तथा स्थिर (भारी) हो तो क्षार के योगों का सेवन कराये।

आग उगलने वाली आवाज मौन हो गई.... राजीव भाई के प्रखर और ओजस्वी वाणी शांत हो गई। उनकी वाणी में स्वदेश के लिए प्रेम और अगाध श्रद्धा थी।..... राजीव भाई के जाने से देश को बहुत बड़ी क्षति हुई है। उनके असमय निधन से राष्ट्र ने जो खोया है उसकी भरपाई कोई नहीं कर सकता। .... देश में अब दूसरा राजीव पैदा नहीं होगा। उनकी एक आवाज़ करोड़ों आवाज़ों के बराबर थी।.... उनके स्वदेशी के स्वप्न को साकार करने के लिए हम सच्चे प्रयास करें। यही उस पुण्यात्मा को सच्ची श्रद्धांजलि होगी....

परमपूज्य स्वामी रामदेव जी

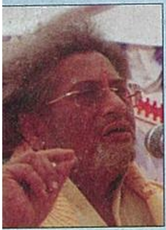

राजीव भाई का जीवन निरंतर कर्मयोनि का जीवन था। वर्धा से निकलकर हरिद्वार आने पर उनकी यात्रा पूर्ण हो गई थी। भारत स्वाभिमान के लिए उन्होंने जो पृष्ठ भूमि बनाई, वह उनके अद्‌भुद ज्ञान का प्रमाण है। उनके पास जो ज्ञान था। उनकी जो स्मृति थी वह बहुत कम लोगों के पास होती है। पाँच हजार वर्षों का ज्ञान उनके पास था। उनका दिमाग कम्प्यूटर से भी तेज चलता था। उनका आन्दोलन रूकेगा नहीं, ऐसी परमपिता से प्रार्थना है....

परम श्रद्धेय डॉ. प्रणव पण्ड्या

राजीव भाई द्वारा संकल्पित

स्वदेशी ग्राम

(स्वदेशी शोध केंद्र, सेवाग्राम, वर्धा)

भारत को स्वदेशी और स्वावलंबी बनाने के लिए, तथा राजीव भाई के अधूरे सपनों को पूरा करने के लिए राजीव भाई की स्मृति में सेवाग्राम, वर्धा में 23 एकड़ में एक स्वदेशी शोध केंद्र बनाने की योजना है। आपका सहयोग अपेक्षित है।

उद्देश्य :- स्वदेशी के दर्शन पर आधारित भारत बनाने के लिए
- जैविक खेती प्रशिक्षण और स्वदेशी बीजों के संरक्षण के लिए
- स्वदेशी शिक्षा के प्रयोग के लिए
- गौ संवर्धन और पंचगव्य शोध के लिए
- स्वदेशी रोजगार उपलब्ध कराने के लिए
- भारत में स्वदेशी नीतियों को लागु करने के लिए
- स्वदेशी उद्योगों को बढाने के लिए शोध कार्य
- भारत के पारंपरिक ज्ञान को आम जन के बीच फैलाने के लिए

स्वदेशी प्रकाशन
सेवाग्राम, वर्धा